

# कश्मीरी पण्डित समाज

## (जितना प्रबुद्ध उतना कष्ट भोगी)

# क्यों?


लेखक :-

**त्रिलोकी नाथ पण्डित 'वानप्रस्थी'**

एम.ए. (हिन्दी, संस्कृत) बी.एड.

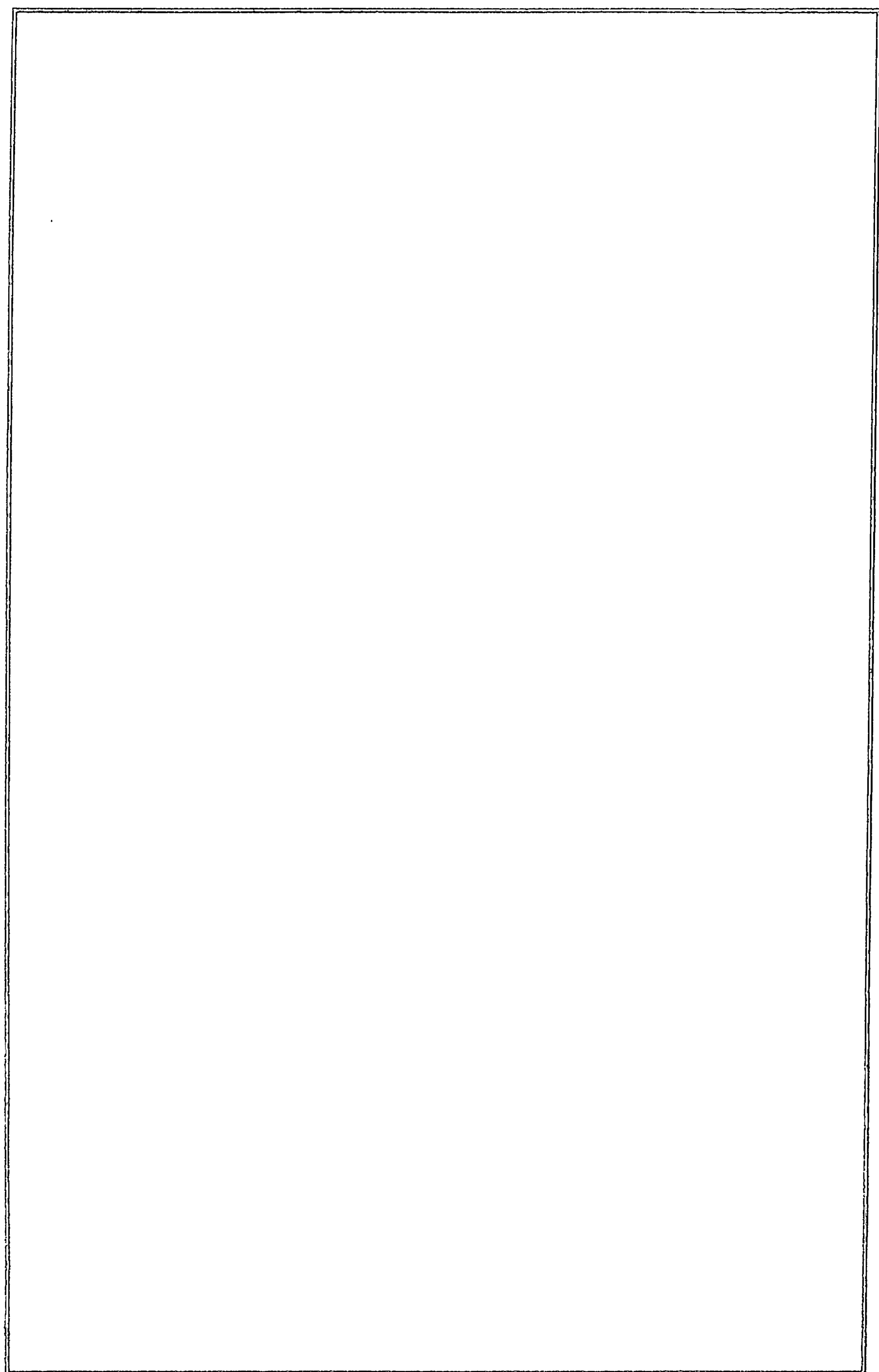


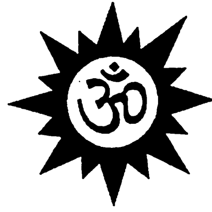
प्रकाशकः-

उतकृष्ट पारिजात आश्रम

श्री राधा कृष्ण मन्दिर

ढोक-वज़ीरां नगरोटा





# कश्मीरी पण्डित समाज

## (जितना प्रबुद्ध उतना कष्ट भोगी)

## क्यों?


**लेखक :–**

**त्रिलोकी नाथ पण्डित 'वानप्रस्थी'**

एम.ए. (हिन्दी, संस्कृत) बी.एड.



प्रकाशक

उतकृष्ट पारिजात आश्रम

श्री राधा कृष्ण मन्दिर

ढोक–वज़ीरां नगरोटा

****

**प्रकाशक :–**
उतकृष्ट पारिजात आश्रम
श्री राधा कृष्ण मन्दिर
ढोक–वज़ीरां नगरोटा



प्रथम संस्करण – 2013

संख्या – 1000

मूल्य – ₹ 50/–

सर्वसाधारणार्थ – ₹ 30/–

मुद्रक :

जंडियाल प्रिंटिंग प्रेस
महेन्द्र नगर, जम्मू
फोन : 0191–2553140

****

# विषय सूची



****

# प्राक्कथन

जब से मैंने होश संभाला, मैं ने अपने कश्मीरी पण्डित समाज को किसी न किसी रूप में त्रासदी का जीवन व्यतीत करते ही पाया। भारत की स्वतंत्रता से पूर्व, यद्यपि इस समाज को शारीरिक रूप से भय नहीं था, परन्तु मानसिकरूप से कुढन और घुटन का जीवन व्यतीत करते ही देखा। 1947 ई. में जब देश विभाजन के उपरान्त राजनीतिक रूप से शेष बचा देश स्वतंत्र हुआ, तो इस छोटे से कश्मीरी पण्डित समाज का परतन्त्रता का दौर आरम्भ हुआ। यह कष्ट कर दौर तब पराकाष्टा को पहुंच गया जब 1989–90 ई. में इस सम्पूर्ण जाति को देश निकाला देकर कष्टकर और अपमानित जीवन व्यतीत करने पर विवश किया गया। यह दौर आजतक भी थमने का नाम ही नहीं लेता है। ऊपरी रूप से देखा जाता है कि यह समाज बड़ा आस्तिक, निष्ठावान और धार्मिक जीवन जी रहा है। सत्शास्त्रों में वर्णन हुआ है कि धर्म की जय होती है – 'यतो धर्मः ततो जयः।' और 'धर्मेण हतो हन्ति, धर्मो रक्षति रक्षितः' तो क्या शास्त्र उक्ति असत्य हो सकती है? यदि नहीं, तो धार्मिक रूप से इस समाज के कष्ट का मूल कारण क्या हा सकता है? ऐस ही प्रश्न बाल्यकाल से ही मेरे अन्तर्मन में उठते रहे। यह प्रश्न मैंन कितने ही विद्वानों, संतों, साधुओं और उन्य बुद्धिजीवियों से पूछा। उन्होंने विभिन्न प्रकार के कारण भी बता दिए जो किसी हद तक सत्य भी दिखे, परन्तु इस जानकारी से मेरे अन्तर्मन की सन्तुष्टि नहीं हुई। क्योंकि ये कारण या तो व्यक्तिगत थे, या सामाजिक थे, या अधिक से अधिक राजनैतिक थे। ऐसे ऐतिहासिक कारण मेरे मूल प्रश्न का उत्तर नहीं हो सकते थे। और मैं ऐसे ही प्रश्नों के भँव्वर में गोते खाता रहा परन्तु मूल कारण नहीं मिला।

विस्थापन के सत्रह वर्षों बाद एक कार्यक्रम में मेरी मुलाकात,

आकस्मिक रूप से, श्रद्धेय महामण्डलेश्वर स्वामी दिव्यानन्द जी 'सरस्वति' से हुई। स्वामी जी 'कैलाश विद्याधाम चिनौर' आश्रम् के अभिभावक हैं। उनसे भी मैंने अपना प्रश्न पूछा। वे कश्मीर में बहुत समय तक रह चुके हैं और उन्होंने सहजता के साथ एक ऐसा कारण बता दिया जो अभी तक न किसी ने मुझे बताया था और न कभी मेरे ही मन में ऐसा विचार आया था। इस बात पर विचार करके मेरे मूल प्रश्न का उत्तर मिल गया और मेरे भटकते हुय अन्तर्मन की सन्तुष्टि भी हुई। इस बात को मैं अपने समाज के प्रबुद्ध वर्ग एवं जन समाज तक पहुंचाना अपना कर्त्तव्य समझाता हूँ। ताकि कष्ट का निवराण भी हो सके और कारण से सब अवगत भी हो जाएं। फलतः इस पुस्तिका का निर्माण हुआ। कैसा हुआ, इसका तो सहृदय पाठक और विद्वज्जन ही आकलन कर सकते हैं। उनकी राय की मैं सदा प्रतीक्षा करूँगा। अपनी ओर से मैं केवल कर्त्तव्य पालन करने का कार्य ही निभा रहा हूँ। इति। ओं शम्।

**विनीत**
**लेखक**

## प्रेरणा एवं आशीर्वचन
## (श्री कैलाश विद्या धाम, चिनौर, जम्मू

**प्रशस्ती पत्र**

कश्मीरी ब्राह्मण (प्राणियों में) सब से लोकप्रिय समाज रहा है। कुछ लोगों को यह रास नहीं आया उन्होंने लोक प्रियता को बिगाडने का सरल साधन ढूँढा–'श्रुति अन्याय'। इस से समाज का जल्दी पतन होता है। यही हुआ भी है।

त्रिलोकी नाथ पण्डित 'वानप्रस्थी' जी ने जब मुझसे पूछा तो मैंने यही बात कही। मुझे माँ भगवती की कृपा से यह तथ्य मालूम है। मेरा (कश्मीरी पण्डितों से) निवेदन है कि वे लोकप्रिय बनें। ओ३म्।

विश्वकर्मन हविषा वावधान स्वयं यजस्व पृथिवी भुवाद्याम्।
मुलधन्वन्ये अभिवी जवासः इहास्मान्य मध्वा सुरिस्तार।।

*(ऋक् 10, 17,9)*

मैं आधुनिक कश्मीरी पण्डित समाज को अपने मूल ढांच में लाने के प्रयास के लिए श्री त्रिलोकी नाथ पण्डित 'वानप्रस्थी' जी को शुभाशीष देता हूँ।

*(श्री 1008 स्वामी दिव्यानन्द सरस्वती)*

## आभार

### आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः।

**(Let Noble thoughts come to us from everyside)**

इस पुस्तक के निर्माण कार्य में सर्वप्रथम प्रेरणा मुझे श्रद्धेय महामण्डलेश्वर 1008 स्वामी दिव्यानन्द सरस्वती जी के उस सहज उत्तर से मिली जो उन्होंने मेरे अन्तस्तल को आलोडित करने वाली अनुत्तरित प्रश्न के पूछने पर दिया, और मेरी जिज्ञासु भावना को शांत किया। मैं विनम्र भावना से उनके चरणों में प्रणाम करते हुए हृदय से उनका आभार प्रकट करना अपना प्रथम कर्तव्य समझता हूँ।

वर्तमान समय में देश–धर्म और समाज को धार्मिक दृष्टि से मार्गदर्शन करने वाले उन सब महान आत्माओं का मैं आभार प्रकट करता हूँ। जिन्होंने इस पुस्तिका की पाण्डुलिपि को पढ़कर और मननकर अपनी अमूल्य सम्मति लिखित रूप में प्रदान की और मेरे छोटे से प्रयास की भूरि–भूरि सराहना की। इन महानुभावों में विशेषरूप से आनन्दस्वामी प्राणनाथ जी भट्ट 'गरीब' भाई जी, गीता सत्सङ्ग आश्रम मुट्ठी के संस्थापक एवं अभिभावक श्रद्धेय श्री स्वामी कुमारी जी, स्वयमानन्द आश्रम मुट्ठी की वर्तमान पीठासीन अध्यक्षा माता अपर्णा देवी जी, कश्मीरी पण्डित समाज के धार्मिक और सामाजिक रूप से मार्ग दर्शक एवं विजयेश्वर पंचाङ्ग के मुख्य सम्पादक ज्योतिषी श्री ओंकार नाथ जी शास्त्री उल्लेखनीय हैं। मैं इन सबका हृदय से आभार प्रकट करता हूँ। मैं दैनिक समाचार पत्र 'हिन्दुस्तान टाइम्स' का भी आभारी हूँ। जहां से मैंने "Inner Voice" शीर्षक के अन्तर्गत छपने वाले दो अभिलेखों को भी उद्धत किया है ताकि केवल अग्रेजी जानने वालो को भी विचार विनिमय करने की प्रेरणा मिले। स्वामी कुमार जी ने अपना आशीर्वचन फारसी लिपि में भेजकर उन लोगों पर भी कृपा की है जो आजतक भी देवनागरी लिपि से अधिक फारसी लिपि से ही अवगत हैं।

उनका यह प्रयास अत्यन्त सराहणीय है।

मैं संजीवनी शारदा केन्द्र आनन्द नगर, बोडी, जम्मू के माहमंत्री श्री द्वारिकानाथ रैणा का भी आभारी हूँ जिन्होंने अपने अत्यन्त व्यस्त कार्यक्रमों में से समय निकाल कर इस पुस्तक की पाण्डुलिपि तैयार करके इसे पढ़ने और छपने योग्य बना दिया, तथा प्रेस की सारी जिम्मेदारी निभाई, इनकी सहायता के बिना इस रूप में इतनी शीघ्रता से छपकर तैयार होना असम्भव था। मैं कामना करता हूँ कि परमापिता परमेश्वर इनपर सदा अपनी अनुकम्पा बनाए रखें।

मैं उन सभी महानुभावों का भी अभारी हूँ जिन्होंने समय – समय पर मेरे विचारों को सुनकर कुछ प्रश्न उठाये और उनका उत्तर ढूंढने के लिए मुझ प्रेरित किया ताकि यह विचारधारा सर्वथा त्रुटिहीन दिखे और कोई भी ऐसा साधार या निराधर प्रश्न अनुत्तरित न रहे। मैं अपनी सुपौत्री सुश्री चेतना जी को भी शुभाशीष देता हूँ, जिसने कुछ गण्यमान्य महानुभावों के लिखित विचारों की पाण्डुलिपि तैयार करने में समय पर मेरी सहायता की। उसके आगामी दाम्पत्य जीवन की सफलता के लिए मंगल कामना करता हूँ।

यदि इस अकिंचन जनके इस प्रयास से किसी भी व्यक्ति को बौद्धिक, नैतिक, सामाजिक या अध्यात्मिक रूप से किंचित मात्र भी कुछ लाभ या परामर्श मिले तो मैं इस प्रयास को सफल समझूंगा। किसी भी व्यक्ति को मेरे इस लेखन से किसी भी रूप में एहिक या आमुष्यिक रूप स कुछ कठिनाई या उल्झन उत्पन्न हो जाए तो मैं विनम्र भावना से उनसे क्षमा प्रार्थी हूँ।

परमपिता परमात्मा सबको सद्बुद्धि एवं सद्विवेक से अनुग्रहीत करें ताकि यह संसार सब के लिए सुखसम्पन तथा दुःख विहीन बन सके।

***ओ शांतिः! शांतिः!! शांतिः!!!***

## प्रथम प्रसङ्ग

### भुमिका

मेरा जन्म तब हुआ जब कश्मीर में महराजा हरिसिंह का शासन था। यद्यपि कश्मीरी पण्डित समाज अपने को सुरक्षित समझता था फिर भी भीतर ही भीतर कुछ कुढन सा अनुभव कर रहा था, क्योंकि मेरे जन्म से दो वर्ष पूर्व ही इस्लामी आतंकवाद ने भी जन्म लिया था, जिसमें श्रीनगर तथा देहातों के हिन्दुओं को बहुत क्षति उठानी पड़ी थी। हिन्दू महाराजा होने के कारण अल्पसंख्यक हिन्दू समाज फिर भी आश्वस्थ था कि कुछ भी हो जाए, प्रशासन उसका भरपूर खयाल रखेगा। जीवन उन दिनों सीधा–साधा ही था, अतः आर्थिक रूप से कमज़ोर होते हुए भी सुखमय जीवन ही व्यतीत कर रहा था। पुरूषवर्ग लगभग सौ प्रतिशत पढ़ा–लिखा था, परन्तु महिलावर्ग में विशेषतया देहातों में पढ़ने–लिखने का रिवाज कम ही था।

इस समाज के प्रत्येक घर में एक पूजा–कक्ष हुआ करता था। लोग निष्ठापूर्वक पूजा–पाठ करते थे। मन्दिरों में भी जाया करते थे और नास्तिकों को नीच दृष्टि से देखते थे। उन दिनों शीतकाल में बहुत बर्फ–बारी होती थी और लगभग तीन मास तक आवागमन का कार्य रूक सा जाता था, अतः शाम के समय भोजनोपरान्त घर के सब लोग एक बड़े कक्ष में एकत्र होते थे और कातने–बुनने का अथवा घास की चटाई बनाने का धन्धा दो – तीन घण्टे तक होता था, जबकि घर का कोई वयोवृद्ध या अधिक पढ़ा–लिखा आदमी कोई धार्मिक कथा सुनाता था, या धार्मिक ग्रन्थ का जोर–जोर से वाचन करता था। इस प्रकार काम–धन्धा भी होता था और अच्छे संस्कार भी पड़ते थे। लोगों में प्रभु–भक्ति, पाठ–पूजा और खाने पीने में शुचिता पाई जाती थी।

मैं भी ऐसे ही एक संस्कारित घराने में उत्पन्न होकर पला

बढ़ा। मेरी दादी माँ शुचिता का बारीकी से विचार रखती थी। ऐसे वातावरण का प्रभाव पड़ना अवश्म्भावी था। अतः मैं भी इसी रंग में रंगा गया। फिर जब थोड़ा बड़ा होकर विद्यालय में पढ़ने लगा ते इतिहास में पढ़ने लगे कि कश्मीर प्रदेश कमी पूर्णतः हिन्दू देश ही था, परन्तु लगभग एक सहस्त्र वर्ष पूर्व कश्मीर में इस्लाम का आगमन हुआ। जिसके कारण समाज को बहुत अत्याचार सहन करने पड़े। मार–दाढ़ और बलात्कार के कारण हज़ारों हिन्दू मारे भी गए और घर से निकाल भी दिए गए। कुच्छ लोग भाग भी गए परंतु अधिकतर लोग निर्बल मानसिकता के कारण धर्मान्तरित भी हुए जिनकी सन्तति तात्कालिक मुस्लिम समाज के रूप में दिखने लगी। यही कारण है कि बहुत सी जातियों–उपजातियों के नाम दोनों समाजों में समान रूप से पाए जाते हैं और यह विधि–विडम्बना ही मानी जाएगी कि इसी धर्मान्तरित समाजने नाना प्रकार से अपने मूल समाज को प्रताडित करना अपना धर्म मान लिया। उनके बढ़ते हुए अत्याचारों के कारण यह समाज अब अपने ही देश में नगण्य समाज बनकर रह गया।

मननशील स्वभाव का होने के कारण मैं बचपन से ही यह सोचता आ रहा हूँ कि क्या कारण है कि इस धार्मिक स्वभाव वाले, शरीफ और निष्पाप समाज को असहमीय पीडा को सहन करना पड़ रहा है? मन में कभी–कभी विचार आता था कि क्या यह प्राकृतिक नियमों का उल्लङ्घ नहीं कि निष्पाप समाज कष्ट भोगता जाए और पापी अत्याचारी समाज मौज करता रहे? मैं ने यह विचार बहुत से बुज़र्गों, विद्वानों और संत–'साधुओं के सामने भी प्रस्तुत किए, परन्तु कहीं से कोई ऐसा उत्तर नहीं मिला जिस से मेरे मन को शांति मिले या समस्या का समाधान समझ आये। 'मरता क्या न करता' मैं भी इसे ईश्वरीय इच्छा समझ कर खामोश बैठ गया। परन्तु फिर भी मनमें यह प्रश्न उठते थे कि जिसका विधान ऐसा विपरीत फलदायक हो सकता है, क्या वह ईश्वर कहलाते योग्य हो सकता है, कभी – कभी मैं इतना नास्तिक बन जाता कि सब

धर्म–दर्शनों पर से विश्वास ही उठ जाता था। मेरा अधिकतर जीवन इन्ही भूल–भुल्लयों में गुजर गया। परन्तु मार्ग कहीं से भी नहीं मिल रहा था। नास्तिकवाद में भी तो प्रश्न का उत्तर नहीं मिल रहा था। अतः अपने स्वाभाविक कर्त्तव्य कर्म में लगा ही रहा। फिर एक ऐसा समय भी आया कि जब इस शरीफ समाज को इस्लाती आतंकवाद ने संपूर्ण रूप से देश – निष्कासन देकर सदा के लिए प्रताडित किया। ऐसा होने पर यह सम्पूर्ण समाज एक दूसरे से बिछुड भी गया और बिखर भी गया। कुछ वर्षो के बाद जब यह समाज थोड़ा अपनें पाओं पर खड़ा होने योग्य बन गया तो मेरे अन्तर्मन में यही प्रश्न फिर प्रबल होकर खड़ा हो गया। अपने कर्त्तव्य कर्म भली–भांति निभाते हुए भी यह मूल प्रश्न, उत्तर न मिलने के कारण असहनीय दशा तक पहुंच गया।

फिर दैव वश अप्रैल 2007 ई. में एक सामाजिक कार्यक्रम 'कैलाश विद्याधाम' चिनौर, जम्मू में रखा गया था। इसमें सम्मिलित होने के लिये मुझे भी निमन्त्रित किया गया था। इस आश्रम में मेरा यह पहला ही आगमन था। बड़ा ही सुंदर और मन मोहक आश्रम है। इसका परिसर भी विशाल है, देखने से ही लगता है कि इस आश्रम के निर्माण कार्य में तीस–चालीस लाख रूपये खर्च हुए होंगे। प्रथम सत्र के अंत पर जब बाहर निकले तो वहां कुर्सियाँ लगी हुई थी। एक दूसरे को अभिवादन करते हुए मैं भी एक कुर्सी पर बैठा। पास ही दो चार बंधु परस्पर कुछ बातें कर रहे थे। अचानक मेरे कानों में आवाज़ आई कि इस आश्रम के लागत का लगभग तीन–चौथाई भाग कश्मीरी हिन्दुओं ने दान दिया है। सहसा मेरी दृष्टि सामने बैठे हुये बन्धुओं पर पड़ी, जिन्हें यह बात एक युवक सन्यासी बता रहे थे। मैंने पलभर में समझ लिया कि यह युवक सन्यासी ही इस आश्रम का अभिभावक होगा। उत्सुकतावश मैंने भी अपनी कुर्सी उनके समीप लेली और इन सन्यासी महोदय को प्रणाम करके उनका परिचय पूछा और यहमी पूछा कि क्या वे कश्मीर कमी गए हैं? उन्होंने उत्तर में कहा कि वे भी विस्थापन से

पूर्व नागबल (अनन्तनाग) के ही परिसर में कई वर्षो तक रहते थे। अतः एक प्रकार से वे भी एक विस्थापित ही है। मैंने अपना परिचय देकर उन्हें कहा कि मैं भी उसी ज़िले का निवासी हूँ और नागबल में मेरा कई वर्षो तक आना–जाना होता था, परन्तु वहां उनके कभी दर्शन नहीं हुए। उन्होंने उत्तर में कहा कि जिस समय की आप बात करते हैं, उन दिनों में शास्त्र अध्ययन करने के लिए काशी गया हुआ था। शिविर के समापन पर मैंने उनसे जाने के लिए आज्ञा मांगी और पुनः आने की बात करके उनका फोन नं. भी लिया। फिर एक दो बार किसी कार्यक्रम के सिलसिले में उनसे फिर मिलना सम्भव हुआ और बातचीत करने का अवसर भी मिला। मैंने उनसे भी अपने अन्तर्मन में उठे प्रश्न के सम्बन्ध में पूछा कि क्या धार्मिक और दार्शनिक कारण हो सकता है कि इस छोटे से धर्मप्राण, शरीफ और पढ़े–लिखे समाज को इतनी बार मार–दाढ़ और विस्थापन का कष्ट भोगना पड़ा है और इसका कहीं अंत ही दिखाई नहीं देता है। उन्होंने सहज भाव से उत्तर में कहा कि 'मैंने भी इस प्रश्न पर बहुत शोध किया है, और इसपर एक पुस्तक भी लिखना आरम्भ किया है, जिसे पूर्ण करने में अभी कुछ वर्ष लगेंगे, क्योंकि मेरा बहुत ही व्यस्त कार्यक्रम रहता है। परंतु उन्होंने संक्षेप में बता दिया कि कश्मीरी पण्डित जाति में एक विडम्बना हुई है कि उन्होंने अपनी पूजा पद्धति और अन्य धार्मिक कार्यक्रमों में दो विरूध प्रकृति की पद्धतियों का समावेश किया है। जिसके कारण उनके धार्मिक कार्यक्रमों के फलस्वरूप सदा ही विस्फोट होता चला आ रहा है। उन्होंने इस बात की थोड़ी व्याख्या भी कर ली और मुझे लगा कि वर्षों से चले आरहे मेरे अन्तर्मन के प्रश्न का सही उत्तर मिल गया है। फिर एक दो वर्षो तक अब इस नये परिप्रेक्ष्य में मैंने भी कुछ और अध्ययन किया और शोध कार्य भी किया तथा विद्वज्जनों से विचार – विमर्श भी किया। परिणामतः इस पुस्तका का निर्माण हुआ। जिस युवक सन्यासी की बात मैंने की है वे हैं – श्रीमत् परमहंस महामण्डलेश्वर ब्रह्मनिष्ठ श्री 1008 स्वामी

दिव्यानन्द जी सरस्वती, जो इस समय 'कैलाश विद्याधाम' चिनौर आश्रम के अभिभावक संरक्षक हैं। उन्होंन वेदोपनिषद् एवं अन्य शास्त्रों का गहण रूप स अध्ययन किया है और कदाचित् यही कारण है कि अपने आश्रम के भव्य सभागार के चारों दीवारों पर मोटे अक्षरों में चार महावाक्य लिख वाये गए है। जो सम्पूर्ण सत्शास्त्रों का निचोड है। मैं उन्हें विनम्रता से प्रणाम करता हूँ।

## दूसरा प्रसङ्ग

### अब इस नये दृष्टिकोण से प्रेरित होकर मैंने

पुनः शास्त्र अध्ययन प्रारम्भ किया और शोधकार्य भी जारी रखा। शास्त्रों में बार–बार वर्णन आता है कि–

'यतोधर्मः ततोजयः' तथा
'धर्मेण हतो हन्ति, धर्मो रक्षति, रक्षितः।''

तो क्या यह शास्त्र वचन कभी मिथ्या हो सकते हैं? कदापि नहीं। ऐसा होने की कमी सम्भावना ही नहीं है। अब नए दृष्टिकोण से देखने पर मुझे लगता है कि अवश्य ही हमारे ही धर्म–कार्यों में कही त्रुटि है। जिसके फल–स्वरूप हमारे **धार्मिक कार्य पाप कर्म बन जाते हैं।** और उन का फल भी वैसा ही निकलना अवश्यमभावी है। धार्मिक कार्य दो प्रकार के हो सकते हैं। एक वे जो किसी निमित फल की प्रप्ति के लिए किए जाते हैं, इन्हें सकाम कर्म कहते हैं। और दूसरे किसी इच्छा के बगैर, केवल कर्त्तव्य समझकर किए जाएं। उन्हें निष्काम कर्म कहते है। ज्ञानियों के कर्म सदा निष्काम ही हुआ करते हैं। सकाम कर्म करने वाले अज्ञानियों की ही श्रेणी में आते हैं। श्रीगीताजी में भगवान कहते हैं– ' न बुद्धिभेदं कुर्यात्, अज्ञाणां कर्म संगिणाम्'। परामात्मा का साक्षात्कार केवल और केवल निष्काम कार्यो से ही सम्भव है, जो पूर्णस्प से शास्त्रविधि द्वारा किए जाएं। सकाम कर्मो द्वारा ऐसा होने की सम्भावना है ही नहीं, क्योंकि फल प्राप्ति के बाद वे समास हो जाते हैं। इसी लिए श्री भगवान् स्वयं आदेश देते हैं कि – 'कर्मण्येवाधिकरस्ते, मा फलेषु कदाचन' अब ज़रा ध्यान दीजिए कि अपन समाज में कितने लाग सकाम कर्मी हैं और कितन निष्काम कर्म करने वाले। यदि निष्काम कर्म पूर्णतया सम्पन्न न भी हो जाएं, तो भी किसी प्रकार से अनिष्टकारी नहीं होते। परन्तु सकामकर्म यदि शास्त्र सम्मत रीति से न किए जाएं तो अनिष्टकारी हो सकते हैं। हमारे समाज की विडम्बना यह है कि कम से कम श्रम करके

अधिक से अधिक फल की इच्छा की जाती है। वह भी शीघ्रतिशीघ्र। ऐसा होने के लिए धर्म के कार्यो में अधर्म कार्यो का भी सम्मिश्रण किया जाता है। और इसे तान्त्रिक पद्धति का नाम दिया जाता है। यदि हम गहनरूप से समीक्षा करें तो ज्ञात होगा कि हमारी सभी पूजा पद्धतियां वैदिक रीति पर आधारित है, जिनमें सर्वप्रथम ध ूप–दीप संकल्प किया जाता है। हमारी शिव रात्रि पूजा हो या अन्य देवी–देवताओं का पूजन, जन्मदिन पूजा हो या कोई श्राद्ध कर्म। या किसी संस्कार का कर्म–ये सब वैदिक पद्धति पर ही आधारित हैं। तांत्रिक पद्धति का इनके साथ लेशमात्र का भी वास्ता नहीं। अतः कर्म करते समय दोनों पद्धतियों को सदा पृथक रखने में ही बुद्धिमानी है। निष्काम कर्मो में शास्त्रीय पद्धति का उल्लँघण करने की आवश्यकता ही नहीं होती है क्योंकि वहां करने वाले के मन में कोई स्वार्थ होता ही नहीं। यदि सब लोग अपना कर्त्तव्य कर्म समय पर करते रहें, तो समय पर उनका फल स्वतः ही मिल जाएगा। बच्चों को प्रतिदिन अपनी माता को यह स्मरण कराने की आवश्यकता ही नहीं कि उनके लिए वह भोजन बनाए। इसी प्रकार जिस प्राणी को जिस समय जिस वस्तु की आवश्यकता होती है वह प्रकृति उसको देती ही है, प्राणी चाहे मांगे या न मांगे। परन्तु जो वस्तु उसके लिए हानिकारक होगी वह उसे कभी नहीं देगी। इसी को प्राकृतिक नियम कहते हैं। इस नियम का तोडना ही पाप है। यदि कोई अपनी बुद्धि से काम लेकर ईश्वर से कुछ अधिक मांगले, पहले तो वह देगा नहीं, परन्तु यदि देगा भी तो प्रायः वह उसके लिएए हानिकारक ही बन जाता है। घर में नाना प्रकार के पकवान बने हों तो चंचल बच्चा भी उतनी मात्रा में प्राप्त करेगा ही जितना उसे वह पचा सकता है। यदि उससे अधिक वह मांगे तो माता–पिता उसे देंगे नहीं, फिर भी यदि बच्चा मांगना नहीं छोड़े तो वे उसे झिडककर या थप्पड मारकर भी चुप करायेंगे।

अब यदि हम ऊपर लिखित तथ्यां की दृष्टि से देखे और

मनन करें तो पाएंगे कि अपने समाज के अधिकतर क्रियाकर्म इस कसौटी पर खरे नहीं उतरते। कुछ कर्म ऐसे भी होते हैं जहा पुण्य से अधिक पाप ही लगते हैं। एक उदाहरण देता हूं – शिवरात्रि आने पर सब लोग स्वच्छता का ध्यान रखते है। पूजा पाठ भी करते हैं, व्रत उपवास भी रखते हैं। परन्तु रीति रिवाजों के नाम पर ऐसे दुष्कर्म भी करते हैं, जिनका इस त्यौहार के साथ दूर का भी वास्ता नही। शिवरात्रि पूजन जो किया जाता है वह पूर्णरूपेण वैदिक पद्धति पर आधारित है। षोडशोपचार रूप से पूजन करने क उपरान्त वैश्वदेव भी किया जाता है। इसका मूल अभिप्राय है कि अपने आस–पास के सब प्रकार क जीव, कीट पतङ्गो सहित, तृप्त हो जाएं और कोई भी प्राणी भूखा न रहे। जब कौवे बिल्ली आदि हिसक प्राणियों के लिए बलि चढ़ाई जाती है, तो पढ़ा जाता हैः– 'श्वानादौ शाव शबलौ वैवस्वत कुलोद्भवौ, ताम्यां पिण्डं प्रदास्यामि ह्यातावेतौ अहिंसकौ' अर्थात् इन हिंसक प्राणियों को मैं इसलिए बलि देकर तृप्त करता हूँ ताकि यह भी हिंसा भाव छोड़कर अहिंसक वृत्ति के बन जाएं और फिर शिवजी के सङ्गी–साथी भैरव गणों का तृप्त करने के लिए रीति–रिवाजो के नाम पर मांस बलि चढ़ाते हैं। आप स्वयं ही विचार कीजिए कि देवादिदेव महादेव के पूजन में अपवित्र मांस मछली का क्या औचित्य है इसी प्रकार कई देवी देवताओं के पूजन में 'तॅहर च़रवन' का प्रसाद भी चढ़ाया जाता है। जब किसी पढ़े लिखे या अनपढ़ से पूछा जाता है कि एसा क्यों करते हो तो कुछ तान्त्रिक ग्रन्थों का हवाला दिया जाता है। देखे अनदेखे या जाने–अनजान हम देवी पद्धति के साथ तान्त्रिक पद्धति का मिश्रण करते हैं और परिणाम निकलता है – विस्फोट। ऐसा करके किस प्रकार के कुशल मंङ्गल की आशा रखी जा सकती है? एक ओर से मानते हैं कि परमात्मा या परशक्ति सब प्राणियों की जनक है और दूसरी ओर किसी निर्बल पशु को काटकर उसका मांस उसी के जनक अर्थात माता–पिता का खिलाते है। आखिर कोई माता–पिता अपने छोटे सन्तानों को मारने

वाले अपने अग्रज संतान पर कैसे प्रसन्न हो सकत हैं? प्रसन्नता की तो बात ही नहीं, वे अवश्य ही क्रोधित होकर उसे उचित दण्ड देंगे।

हम कहते हैं कि हमारा समाज प्रबुद्ध है, संस्कारित है। परंतु ध्यान पूर्वक विचार कीजिए कि क्या हम ये संस्कार शुद्ध रूप से करते है? मौखिक रूप स हम यह कहते थकते नहीं कि सम्पूर्ण देश में जहाँ केवल सोलह संस्कार ही किए जाते हैं, वहां हमारा कश्मीरी पण्डित समाज चौबीस संस्कार करता ह। वास्तविकता यह है कि हमारे मुख्य संस्कार समय पर किए ही नहीं जाते हैं। दूसरा इनके करने में तो शास्त्र विधि का उल्लँघण होता रहता है। जातकर्म संस्कार या मुण्डन, अन्नप्राशन, सूर्यदर्शन इत्यादि संस्कार या तो समय पर किए ही नहीं जाते, या किए भी जायें तो आडम्बर रूप में। मेखला संस्कार के समय ही उससे पहले के सभी संस्कार किए जाते है; तो उस समय इन संस्कारों के करने का क्या औचित्य और क्या लाभ मिलेगा? पंचाङ्गकार प्रतिवर्ष चेतावनि देते रहते हैं। कि 'मान ला हम इन संस्कारां को नाम मात्र से ही जीवित रख रहे हैं।' परन्तु कौन ध्यान देता है? कलियुग में मेखला संस्कार अधिक से अधिक सोलह वर्ष तक ही सम्पन्न होना चाहिए। परन्तु अधिकतर लोग विवाह पर ही इस महत्वपूर्ण संस्कार को निभाने का ढौंग करते हैं। भला बताइये कि कार्तिक मास में धान की बुआई करने से किस फल आदि की आशा की जा सकती है? क्या यह हमारी अनभिज्ञता ही नहीं कि हम अपने आप को प्रबुद्ध और शिक्षित समाज कहते हुए थकते नहीं; परन्तु धर्म के नाम पर ऐसे कर्म करते हैं जो मूर्ख से मूर्ख भी करने में संकोच करेगा। एक ओर हम अपने नाम के साथ गोत्र रूप में किसी ऋषि मुनि का नाम जोड कर गर्व से उसकी संतान होने का दावा करते हैं, और दूसरी ओर रीति–रिवाजों के नाम पर अंध–विश्वासों के नाम पर ऐसा भोजन पकाते और खाते–खिलात हैं जिसको देखकर चण्डाल भी

लज्जित हो सकते हैं। भला ऐसा करके हम कुशल मङ्गल की आशा कैसे कर सकते हैं? हैरानी की बात तो यह है कि ये कर्म भी हम धर्म के नाम पर ही करते रहते हैं और यह जानने की तनिक भी चेष्टा नहीं करते कि आखिर धर्म शास्त्र कहते किसको हैं? जिसको जो चाहा, संस्कृत भाषा में कुछ लिख लिया और हम अज्ञान के कारण शास्त्र मान बैठ। इतना प्रबुद्ध और पठित समाज होने के उपरान्त भी हम इस महत्वपूर्ण बात की और उदासीन बने हुए हैं। और यदि कभी भी अपने बुद्धिबल का प्रयोग करते भी हैं तो अपनी विकृत रूचि को सुकृत सिद्ध करने के लिए प्राकृतिक नियमों का उल्लघण करने के लिए वृथा परिश्रम करते रहते हैं। अतः अपनी बात को आगे बढ़ाने से पूर्व हम यह जानने का प्रयत्न करेंगे कि धर्म–शास्त्र किसको कहते हैं? क्या संस्कृत भाषा में लिखे गए, परस्पर विरोधी सभी ग्रंथ 'शास्त्र' की परिधि में आते है? हम यह भी जानने का प्रयत्न करेंग कि शास्त्र विधि का निर्माण करने का अधिकार किसको है? और इस का निर्माण कब और कैसे हुआ? शास्त्र विधान तो किसी देश का संविधान तो नहीं है कि जब चाहा संशोधन कर लिया, और वह भी निजी रूचि के अनुसार जिस में किसी भी प्रकार के बहुमत का विचार किया ही नहीं जाता।

## तीसरा प्रसङ्ग

धर्म–शास्त्र क्या है? इसका निर्णय करने से पूर्व हमें अपने सम्पूर्ण धार्मिक वाड्.मय का भली भांति अध्ययन करना होगा, और सम्यक रूप से अवगत होना पडेगा।

यह सम्पूर्ण संसार प्रकृति द्वारा निर्मित हुआ है और प्राकृतिक नियमों पर ही चलता आ रहा है। प्राकृतिक नियमों के अनुसार चलने वाला प्राणी सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करता है और इनका उल्लघण करने वाला नाना प्रकार के कष्ट भोगने पर विवश हो जाता है। प्रकृति का एक नियम यह भी है कि सुष्टिकर्त्ता प्राणियों की उत्पति से पूर्व ही उनके जीवित रहने के आधार की भी रचना करता है। यही कारण है कि जरायुज प्राणियों के जन्म से पूर्व हीउनके जीवित रहते के आधार दूध को उनके माता के थनों में तैयार करता है। इसी प्रकार बुद्धिबल पर पलने वाला प्राणी अर्थात् 'मनुष्य' जब उत्पन्न किया गया तो उसके साथ ही साथ जीवित रहने के ठीक प्रकार के तौर–तरीके भी तैयार किए गए। इन्ही शिक्षाओं को 'वेद' कहते हैं। वेद कहते हैं ज्ञान को और ज्ञान का निर्माता स्वयं परम पिता परमात्मा है। इसी कारण वेदों को **'अपौरूषेय'** कहा जाता है। इसके मंत्रों को ऋचाएं कहते हैं। सर्वप्रथम इन ऋचाओं के दर्शन जिन ऋषियों को प्राप्त हुए, उन्हें 'मंत्रदृष्टा' ऋषि कहते हैं और उन्हीं के नाम से ये ऋचाएं भी प्रसिद्ध हुई। पहले दो युगों में जब धर्म का पलडा अधर्म से बहुत भारी था तो ये ऋचायें मौखिक रूप से ही परम्परानुसार आगे चलती रहीं। परन्तु तीसरे युग 'द्वापर' में जब धर्म और अधर्म का पलडा समान रहा तो इन ऋचाओं को ज्ञानावतार 'यासकाचार्य' ने ऋचाओं के जटिल शब्दों को समझाने के लिए वैदिक शब्दकोष 'निरुक्त' का निर्माण किया। निरुक्त की व्याख्या निघण्टु कहलाती है।

व्यास ऋषि ने वेदों को चार भागों में विभक्त करके जन–साधारण को समझाने में सहायता प्राप्त कराई। इसी कारण

उन्हें 'वेद व्यास' कहते हैं। विभिन्न ऋषियों ने बाद में वेदों की व्याख्या की। ज्ञानकाण्डी व्याख्याओं का 'उपनिषद्' कहते हैं, और कर्मकाण्डी व्याख्याओं को 'ब्राह्मण ग्रंथ' कहते हैं। संक्षेप में स्मरण रखने के लिए सूत्रों का भी निर्माण हुआ जिन्हें 'ब्रह्मसूत्र' कहते है।बस यही सब मिलाकर धर्मशास्त्र कहलाता है। शेष सभी स्मृति ग्रन्थ, पुराण, इतिहास आदि में भी इन्हीं की व्याख्या की गई है परन्तु इनमें केवल वेद सम्मत सिद्धन्त ही धर्मशास्त्र में आते है और शेष व्याख्याकारों के अपने मत हैं।

इनमें कहीं कहीं बाद में कुछ प्रक्षिप्त श्लोकों का भी समावेश किया गया है। इस कारण इनमें कुछ परस्पर विरोधाभास भी पाया जाता है। इसी कारण हमारे आधुनिक धर्मविधान के निर्माता मनुस्मृति के रचियिता सुप्रसिद्ध मनु महाराज ने स्पष्ट रूप से कहा है कि स्मृति पुराण आदि ग्रन्थों में जो कुछ भी वेद सम्मत है वह ठीक है, जो वेदविरुध है वह तमोनिष्ट होने के कारण त्याज्य है:–

**'या वेद बाह्याः स्मृतियोः, याश्चकाश्च कुदृष्टयः।**
**ताः सर्वाः निष्फला प्रेत्या, तमोनिष्ठा हि ता स्मृतियः।।'**
**(12.95)**

आधुनिक कलिकाल में जब मनुष्य की आयु सब युगों से कम है और इसी अनुपात में विद्वानों में भी कमी आई है तो शुद्ध धर्मशास्त्र का पठन पाठन कठिन हो गया है और एक ही जन्म में इसे पढ़ना समझना कठिन हो गया है तो इस त्रुटि निवारण को दृष्टि में रखकर, भगवान विष्णु के पूर्ण सोलह कलावतार प्रभु श्री कृष्ण ने अर्जुन को निमित बनाकर हमे यह शास्त्र–ज्ञान संक्षिप्त रूप से स्वंय रचा है जिसे श्रीमद्भगवद्गीता' कहते है। यह गीता ग्रन्थ भी स्वयं प्रभुनिर्मित है और सम्पूर्ण धर्म शास्त्र का संक्षिप्तरूप है। मानलो गागर में सागर भर दिया है। आधुनिक मनुष्यों को इसी का अध्ययन करना चाहिए। इसके लगातार अध्ययन करने से

कदाचित एक ही जन्म में शास्त्र विधि का निर्बाध रूप से समझा जा सकता है। लगातार अर्धशती तक इसी का अध्ययन करते हुए इन पंक्तियों का लेखक को किंचिन्मात्र अनुभव हुआ है। अतः जो ज्ञानकर्म इस गीता शास्त्र के अनुरूप है वह ठीक है और करणीय है। जो इसके प्रतिकूल है सर्वथा त्याज्य है। ऐसा करके सब प्रकार के संदेहों और भ्रमों से बचा जा सकता है। जो पूजा–पद्धतियां या रीतियां अन्य पौराणिक ग्रन्थों या स्मृति ग्रन्थों के आधार पर बनाए गए हैं और धर्मशास्त्र से मेल नहीं खाते हैं, वे हमारे लिए अनुकरणीय नहीं है, अपितु सर्वथा त्याज्य हैं, जैसे कि मनु जी ने स्पष्ट आज्ञा दी है। कदाचित् इसी कारण से स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने पुराणों को पढ़ने की मनाही की है। क्योंकि उनमें कुछ बातें परस्पर विरूध कही गई हैं और मनुष्य को भ्रम में डालनें वाली हैं। शास्त्र केवल और केवल 'वेदों' को ही समझना चाहिये। अन्य पुराणों और स्मृति ग्रन्थों में जो कुछ वेद सम्मत है वह ठीक है और अनुकरणीय है। परन्तु जो वेद विरूद्ध है वह सर्वथा छोड़ने योग्य है। इस मनु आज्ञा को यदि हम शिरोधार्य करेंगे तो सब प्रकार की त्रृटियों और पापकर्मों से बचा जा सकता है। अतः समाज में प्रचलित कुछ रीति–रिवाज, पूजा–पद्धतियां जो हिंसा पर आधारित होने के कारण वेद विरुद्ध हैं, एकदम त्याग देनी चाहिएँ। इसी में कल्याण है। इति।।

## चौथा प्रसङ्ग

अब हम पुनः यह देखने का प्रयत्न करेंगे कि इस कश्मीरी पण्डित समाज के रीति–रिवाज, पूजा–पाठ तथा अन्य तौर–तरीके किस सीमा तक इस धर्म शास्त्र के साथ मेल खाते हैं। हम यह भी जानने का प्रयत्न करेंगे कि त्रुटि कहां हो रही है। जिस कारण से यह प्रबुद्ध समाज शताब्दियों से पद–पद पर ठोकरें खाता चला आ रहा है। हम यह भी जानने का प्रयत्न करेंगे कि यह शत–प्रतिशत पढ़ा–लिखा और जागरूक कहलाने वाला समाज इन त्रुटियों के लिए स्वयं कहां तक जिम्मेदार है और इस के संभलने का सही मार्ग क्या है।

कश्मीरी पण्डितों में जितने भी तीज़ त्यौहार और प्रमुख धार्मिक पर्व हैं उन सब में प्रातः स्नान, संध्या, के उपरान्त पूजा पाठ करने की विधि है। यह विधि वैदिक पद्धति पर आधारित है। हर त्यौहार पर सर्वप्रथम धूप–दीप संकल्प किया जाता है। शिवरात्रि पूजा हो या नव रात्रों की पूजा, जन्मदिन की पूजा हो या संस्कारों की पूजा, देवी–देवताओं का पूजन हो या पितरों का श्राद्ध–संकल्प – प्रत्येक के पूजन में वैदिक पद्धति का ही आधार माना गया है। पूजा के अंत में सब प्राणियों की भलाई के लिए कामना की जाती है। यह कह कर किः 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे संतु निरामया सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चित्दुःख भाग भवेत।'

यह विधि शुद्ध सात्विक रूप से निष्काम भावना पर आधारित है। विभिन्न सम्प्रदायों को कुछ तौर–तरीके ऊपरी तौर पर भले ही पृथक –पृथक लगते हूँ परन्तु सभी दर्शन मूल रूप से यम–नियम पालन पर सहमत हैं। इन में भारतीय षड्दर्शन, बौद्ध जैन दर्शन तथा शैव–शाक्त दर्शन सब आते है। भावना यदि निष्काम हो तो ईश्वर प्राप्ति और मुक्ति लाभ मिलता है। यदि यह भावना सकाम हो तो इसकी भी फल प्राप्ति हो जाती है तथा कुछ शक्तियां भी स्वतः ही प्राप्त हो जाती हैं जिनका उपयोग करके हम

अपनी कामनापूर्ति कर सकते हैं। कुछ लोगों ने बाद में प्रेतात्माओं को भी वश करके शीघ्रातिशीघ्र कुछ शक्तियां प्राप्त करने का नया तरीका निकाला। इन रीतियों में मास मछली का प्रयोग करके कुछ पतित–आत्माओं को संतुष्ट करने का तरीका अपनाया, जिनके द्वारा फल प्राप्ति में शीघ्रता हो जाती है परन्तु अन्त समय बडा दुरूह और भयानक होता है। कलियुग के प्रभाव से जब ज्ञान की कमी होने लगी और अज्ञान फैलता गया तो जन साधारण स्वंय क्रिया–कर्म करने के उयोग्य बन गया और उन्हें पुरोहित–वर्ग पर ही निर्भर रहना पडा। कुछ समय तक सब कुछ ठीक ठाक चलता रहा परन्तु समय बदलने पर अज्ञान, लोलुप्ता और विकृत–रूचि ने सब पर प्रभाव डालना आरम्भ कर दिया। इस नई रीति को तान्त्रिक रीति का नाम दिया गया, जो ठीक है कि नहीं मैं नहीं जानता। फिर एक समय ऐसा भी आया कि जब इन दोनों पद्धतियों को परस्पर जोडा गया। आरंभ वैदिक रीति से किया गया और अन्त तान्त्रिक रीति से। विरूद्ध प्रकृति वाले चीज़ों के मिलाने से उसी प्रकार विस्फोट होने लगा, जिस प्रकार दुध और खटाई मिलाने से होता है। या बिजली के दो तार पाज़िटिव(+) और नगेटिव(–) मिलाने से होता है। रीति –रिवाज ऐसे ही चलते रहे, समाज कष्ट पाता रहा परन्तु अज्ञान के आवरण में पडकर वास्तविकता समझ न सका।

जैसे पहले कहा गया है यम–नियम पालन तो सभी मानते हैं। इन में सबसे पहली बात है अहिंसा। अर्थात मन–वाणी–कर्म से किसी प्राणी की हिंसा न करना। शिवरात्रि पूजन को ही लीजिए कि अन्त करते हैं हिंसा से इस प्रकार देवी–देवताओं के पूजन में भी यही विरोध भावना चलती आ रही है। शायद ही सोलह संस्कारों में कोई ऐसा संस्कार होगा जिस पर मांस –भोज का आयोजन नहीं किया जाता हो। जन्मदिन मनाने का भी यही हाल है। कुछ वर्ष पूर्व मुट्ठी गांव में एक मुसल्मान कसाई ने कश्मीरी पण्डितों के खान–पान की प्रशंसा करते हुए यह गर्व से कहा था कि इस

बिरादरी को उसने शिवरात्रि पर पाँच लाख रूपये का मांस बेचा। अनुमान लगाइये कि कितने प्राणियों की हिंसा हुई होगी। और इसका पाप कौन भुगतेगा? मनुजी ने अपने स्मृति ग्रन्थ में स्पष्ट रूप से वर्णन किया है कि:–**अनुमता, निर्शासंता, विहता, क्रय–विकयी। संस्कर्ता चोपहर्त्ता च खादकश्चेति घातका:।** अर्थात– अनुमति देने वाला, बेचने वाला,खरीदने वाला, पकाने वाला, चुराने वाला तथा खाने वाला सब घातक हैं। सब पर समान रूप से कत्ल का पाप चढ़ता है। कुछ पवित्र त्यौहारों पर जहां आमिष द्रव्य लेना वर्जित है, वहां भी मांसामिश्रत नैवेद्य बांटना बडड्पन की बात मानी जाती है। विशेष त्यौहारों के शुभारम्भ पर जो केक काटने की दुष्प्रवृत्ति बन गई है, वह अपशकुन तो है ही, अपवित्र भी है। पहले जो वॅर बनाई जाती थी उसको भी मांस मिश्रण से अपवित्र बनाया जाता है। अमावस्या के दिन खिचडी का भी यही हाल किया जा रहा है। एक औार हम अपने को प्रबुद्ध समाज कहते हैं और श्रेष्ठ सारस्वत ब्राह्मण होने का दावा करते हैं और दूसरी और कर्म–धर्म का यह हाल है, तो हम किसको दोष दें? यह तो स्वंय ही अपने पर कुठाराघात करने के समान मूर्खता ही है। तिस पर भी अचम्बा यह है कि ऐसे पापकर्म के उपरान्त भी ईश्वर से अपने कल्याण कराने की आशा करते हैं।

## पांचवां प्रसंङ्ग

अब शायद किसी के मन में यह प्रश्न उठे कि इस प्रकार की पाबन्दियाँ हम हिन्दुओं पर ही क्यों है? क्या अन्य मताबलम्बी हिंसा कार्य नहीं करते? उनका प्रत्येक धर्म–कर्म तो हिंसा पर ही आधारित है। इस संसार में जब उनको इतने कष्ट नहीं भोगने पडते जितने हम सारस्वत ब्राह्मणों को भोगने पडते हैं। आखिर प्रकृति दो सम्प्रदायों को दो दृष्टियों से क्यों देखती है? ऐसे प्रश्न उठना किसी उत्तर देने से पूर्व हमें प्राकृतिक नियमों का सम्यक रूप से अवलोकन करने की आवश्यकता है! प्राकतिक नियम यह हैं कि समान प्रकृति वाले द्रव्य परस्पर मिल सकते हैं, परन्तु विपरीत प्रकति वालों का मेल विस्फोटक सिद्ध होता है। दूध में दूध ा या जल मिलायें तो चल सकता है। इसी प्रकार खटाई में दुसरी खटाई मिलाएँ तो चल सकता है। परन्तु दूध और खटाई मिलाने से दोनों द्रव्य फट जाते हैं। इसी प्रकार दूसरे मतावलम्बी लोग अहिंसक दर्शनों से बन्दे हुए नहीं हैं। उनके सभी क्रिया–कलाप हिंसा पर ही आधारित हैं, अतः इस जन्म में प्रकृति चलने देती है। दूसरे जन्म की बात तो बाद में जानें। हमारे हिन्दू दर्शन मूल रूप से अहिंसक वृत्ति पर ही आधारित हैं। इसमें हिंसक वृत्ति मिलाने से फट जाना तो प्राकृतिक नियम है। हमारी विडम्बना यह है कि दार्शनिक–धार्मिक रूप से हम दो विरुध प्रकृति वाले कर्मों को मिलाते हैं। इसी कारण विस्फोट हो जाता है। अपने मनतव्य को अधिक स्पष्ट करने के लिए एक उदाहरण प्रस्तुत करता हूँ– हर ओर से बिजली तारों का जाल सा बिछा हुआ है। परन्तु विस्फोट कहीं नहीं होता है। विस्फोट केवल वहा होता है जहां दो तारें सकारात्मक और नकारात्मक(+ive + -ve) मिल जाती हैं। पक्षी जब तक तार पर प्रथक रहता है कुछ नहीं होता। परन्तु जब यही पक्षी दोनों तारों के साथ स्पर्श करता है तो तत्काल करण्ट लगने से मर जाता है। आप भी दोनों तारों को अलग–अलग से पकड

सकते हैं, परन्तु भय तब उत्पन्न होता है जब दानों तारों से सपर्श हो जाता है। इसी प्रकार यदि आप भी सारस्वत ब्राह्मण होने का आडम्बर छोड कर चण्डालों या अन्य मांस भक्षी मतावलम्बी जातियों की भांति आस्थाओं को ग्रहण करेंगे तो तत्काल विस्फोट होने के भय से मुक्त रहेंगे। प्राकृतिक नियमों के आधार से कदापि सम्भव नहीं होगा कि मदिरा पान करके आप 'ज़ाहिद' कहलायेंगे या असत्य भाषण करके आप हरिश्चन्द्र की भांति सत्यवादी कहलाएँ गे। गहरे नाले के दोनों किनारे से पृथक रूप से चलेंगे तो गन्तव्य को पहुँच जायेंगे। परन्तु दोनों किनारों पर पद रखकर चलेंगे तो पग पग पर डूबने का भय बना रहेगा। यदि आप सारस्वत कश्मीरी पण्डित ब्राह्मण कहलाना चाहते हैं तो शुद्ध सात्विक जीवन को अङ्गीकार करना ही पडेगा। यदि ऐसा करना सम्भव नहीं तो सारस्वत ब्राह्मण कहलाना छोड दो। आखिर जो भाई–बहन हमारे समाज से धर्मान्तरित होकर ईसाई–मुसलमान बन गए, उन्हें ये कष्ट नहीं ना भोगने पडते हैं जो हम भोग रहे हैं। इसी प्रकार दार्शनिक रूप से निर्णय एक कर लो कि आपको वैदिक रीति अपनानी है कि तान्त्रिक। एक ही रीति पर चलकर कम से कम इस जन्म के विस्फोटों से तो बच जायेंगे। दूसरे जन्म की बात बाद में देखेंगे। ऐसा होना सम्भव नहीं कि वैदिक रूप से आप मेखला इत्यादि संस्कार भी करेंगे और जिह्वालोलुपता या कुछ निकृष्ट शक्तियां प्राप्त करने के लिए तान्त्रिक पद्धत्ति का भी सहारा लेंगे। यह बात प्राकृतिक नियमों के सर्वथा विरुध है। जिन ग्रंथों में तान्त्रिक रीतियों का वर्णन किया गया है उनमें भी स्पष्ट आदेश दिया गया है कि **सही निर्णय करने की बौद्धिक शक्ति की न्यूनता के कारण कलियुग में तान्त्रिक रीतियों का सहारा लेना वर्जित है।**– "कलौ न पलपैत्रकम्।" (गरुड पुराण)"व्यवहारे तु वैदिकः"(याज्ञवलक्य स्मृति) अथीत व्यवहार में केवल और केवल वैद्धिक पद्धत्ति ही अपनानी चाहिए। एक बात और स्पष्ट करना चाहता हूँ कि मानव जन्म का अन्तिम लक्ष्य भगवत्प्राप्ति और

मुक्तिलाभ प्राप्त करना है, जो केवल और केवल सात्विक रीति को अपना कर ही सम्भव है। राजसिक रीति से या तामसिक रीति से ऐसा न कभी हुआ है, न होता है, न कभी होगा और न कभी होने की सम्भावना ही है। भगवान स्वंय कहते हैं:–

**सत्वात्संजायते ज्ञानं, रजसो लोभ एव च।**
**प्रमाद मोहौ तमसे भवतो अज्ञानं एव च।(भगवद्गीता)**
**तथा**
**ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्वस्था, मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः।**
**जघन्य गुण वृतिस्था, अधो गच्छन्ति तामसाः।।**
**–(भगवद्गीता 14(17,18))**

## छट्टा प्रसङ्ग

हम अब यह जानने का प्रयत्न करेंगे कि हमारे जीवन का मुख्य लक्ष्य क्या है जिसकी प्राप्ति के लिए यह अमूल्य मानव शरीर मिला है। दर्शन शास्त्र के अनुसार चौरासी लाख योनियों के उपरान्त यह मानव जीवन मिलता है ताकि हम इसका उपयोग करके आवागमन के चक्र से मुक्त हो सकें। इसी लक्ष्य की प्राप्ति को **'नर से नारायण'** बनना कहा गया है। ऐसा करना केवल ध र्माचरण द्वारा ही समभ्व है। हितोपदेश के लेखक ने मनुस्मृति का उद्धारए देकर वर्णन किया है कि:– **आहार निद्रा भय मैथुनं च, सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम् धर्मो हि एको अधिको विशेषः, धर्मेण हीनाः पशुभिः समानः।**

अर्थात–धर्म हीन मनुष्यों और पशु–पक्षियों में तो कोई अन्तर नहीं । यह मानव शरीर केवल और केवल मुक्ति लाभ, आत्मा–परमात्मा मिलन या नर से नारायण बनने के लिए प्राप्त हुआ, न कि अन्य प्राणियों की भांति केवल भोग भोगने के लिए या पेट भरने के लिए। **ईशावास्य उपनिषद्**, में इसी कारण से निर्देश दिया गया है–'**तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः**' अर्थात् त्यागमय भोग भोगना चाहिये। हमें हिन्दू होने पर न केवल गर्व होना चाहिए अपितु नियति का आभार मानना चाहिए क्योंकि यह आध्यात्मिक तत्व केवल इसी दर्शन के अन्तर्गत प्राप्त होता है। इसी कारण से भारत –भूमि को कर्म भूमि कहा गया है जबकि अन्य भूमियां केवल भोगभूमियां हैं।

'यतोहि कर्मभूरेषा, ह्यतोऽन्या भोग भूमयः।'

हिन्दू समाज में भी, पण्डित समाज में जन्म प्राप्त करना अधिक श्रेयस्कर माना गया है क्योंकि यहां लक्ष्य प्राप्ति अधिक सुगम होती है। यदि हम धर्मशास्त्र के आदेश–अनुसार जीवन व्यतीत करें। परन्तु यहां दुष्कर्म करने से गिरने का भी अधिक भय

है। जितनी ऊँचाई से गिरा जाए, उतनी ही अधिक चोट लगने या मर जाने का भय होता है। धर्माचरण का अर्थ गृहस्थ छोडना नहीं: अपितु इसी में रहकर परोपकारी बनकर पवित्र रूप से त्यागमय भोग भोगना है।

**तुलसीदास जी कहते हैं–**

"परहित सम कोई धर्म न भाई। पर पीडा सम नहि अधमाई।।"

यहां परहित से सभी चौरासी लाख प्राणियों को समझना चाहिए। नीति शास्त्र में भी लिखा है–

**"विद्या विवादाय, धनं मदाय शक्ति परेशां परपीडनाय।**
**खलस्य, साधो विपरीतमेतत् ज्ञानाय,दानाय च रक्षणाय।।"**

सज्जन और दुर्जन में केवल इतना ही अन्तर होता है कि पहला परोपकारी होता है और दूसरा पर–अपकारी। शेष वृत्तियां तो प्राणियों में समान होती हैं। इन मुख्य बातों को दृष्टि में रखकर कि किसी भी प्रकार की हिंसा का क्या औचित्य है? और वह भी देवी देवताओं के पूजा कर्म में या अन्य निजी शुभ कर्मों के मनाने के नाम पर। यम–नियम पालन पर आधारित सभी भारतीय दर्शनों में किसी भी प्रकार के हिंसा कर्म का होना न सम्भव है और न हाने की सम्भावना है। अमारतीय दर्शनों पर आधारित आसुरी कर्मों में हिंसा का होना आवश्यम्भावी है। पता नहीं ये अमारतीय आसुरी प्रथायें कबसे और क्योकर भारतीय प्रथाओं में समावेश कर गई हैं। इस बात पर बडे बडे विचारक और संत भी हैरान हैं। हिंसा पर आधारित कर्मों से भूत प्रेत तथा अन्य पतति आत्माएँ तो सन्तुष्ट हो सकती हैं, परन्तु देवी देवता कभी नहीं। जिन्हें हम " त्वमेव माता च पिता त्मेव" कह कर पूजते हैं, वे माता–पिता अपने संतानों की बलि से कैसे संतुष्ट हो सकते हैं? यह बात तो प्राकृतिक नियमों के सर्वथा विरूद्ध है। इन कुप्रथाओं से बचने के लिए मनुजी ने

सरल तौर पर एक फार्मूला निकाली, परन्तु हम इस और ध्यान ही नहीं देते। वे लिखते हैं कि जो व्यवहार आप अपने आप से और अपने इष्ट–बंधुओं से करवाना चाहते हैं, वही अन्य प्राणियों के लिए भी करवाना चाहिये। जो व्यवहार अपने प्रतिकूल लगे वह कदापि अन्य प्राणियों के विषय में नहीं करना चाहिएः–

**यत्यतत्वं आत्मनि इच्छेत, तदिछेत इतरामपि। आत्मनः प्रतिकूलानि, परेषां न समाचरेत्।।**" (मनुस्मृति) यदि आप अपने शरीर का मांस दूसरे प्राणियों द्वारा नुचवाना नहीं चाहते हो, तो दूसरे प्राणियों के शरीर का मांस आप भी कभी मत नोचिये। जब आप दूसरों द्वारा अपने शरीर की बलि नहीं दिलवाना चाहते, तो भला बताइये कि दूसरे प्राणियों की बलि चढ़ाना किस पवित्र बुद्धि द्वारा उचित ठहराया जा सकता है? धर्मशास्त्र को दृष्टि में रखकर आप यदि निष्कपट भाव से ध्यान देंगे तो पाएँगे कि हिंसा वृत्ति से आजतक न किसी का उद्धार हुआ है न होरहा है और न ही हो सकता है और न कभी होने की सम्भावना है। भला अग्नि से शीतलता और हिमजल से उष्णता का होना किस युक्ति से सम्भव हो सकता है यदि आप अपना और अपने इष्ट–जनों तथा पूर्वजों का कल्यान कराना चाहते हैं तो बाज़ आओ ऐसे दुष्कर्मों से जिनका परिणाम केवल और केवल दुर्घटनाओं, आपदाओं, और पतन के रूप में ही निकलता है। भगवान श्री कृष्ण ने कलियुग के मानवों को पांच सहस्रवर्ष पूर्व ही चेताया था कि अपने आप को पतित मत करो, अपना उद्धार करो। क्योंकि तुम स्वंय ही अपने मित्र भी हो और अपने आपके शत्रु भी।–

**"उद्धरेत् आत्मनात्मानं, नात्मानं अवसादयेत्।**
**आत्मैव ह्यात्मनो बन्धु, आत्मैव रिपुरात्मना। –(भगवदगीता)**

अपने दुराग्रह पर कायम रहने के लिए कुछ लोग अपने कुछ पूर्वजों का हवाला देकर कहते हैं कि क्या वे गलत थे? उत्तर में उन्हें स्पष्ट रूप से कह देना चाहिए कि मांस भक्षण और बलि

चढ़ावन की प्रथाओं में अवश्य गलत थे, क्योंकि उनका यह कृत्य सारस्वत ब्रह्ममणों को शोभा नहीं देता है। और धर्मशास्त्र के अनुकूल भी नहीं बैठता। और पूर्वज आप किनको कहते हैं? चार–पाँच सौ वर्ष के पूर्वज, हज़ार–ढेड हज़ार वर्ष के पूर्वज या पाँच हज़ार वर्षों के वे पूर्वज जिनकी हम वास्तवमें संतान हैं और जिनका नाम हमारे नाम के साथ गोत्र रूप में जुडा हुआ है। इतिहास को देखिये और मनन कीजिए तो पायेंगे कि हमारे उन वास्तविक पूर्वजों में ऐसी कोई त्रुटि थी ही नहीं, जियका सहारा लेकर आज कुछ अंधविश्वासी लोग अपनी अपवित्र मांस रूचि को उचित ठहराना चाहते हैं अरे वो तो साधक थे ऋषि–मुनि थे, ऐसे सिद्ध पुरूषथे जिन्होंने भगवान कृष्ण के दौर में भी पांडवों के अश्मवेघ यज्ञ के समय पर अपने ज्ञान, कर्म और साधना की धाक बैठा दी थी हाँ! वे हमारे पूर्वज हैं! जिसपर हमें गर्व होना चाहिए। बीच के आपति कालमें यदि कभी किसी पूर्वज में कोई त्रुटि आई भी थी उसे हमें अवश्य सुधारना चाहिए। ऐसी चारित्रिक कमज़ोरियों को ठीक ठहराकर हमें अपने आप को और हमारी आगामी संतीत को पापों के गर्त में डूबने से बचाना चाहिए। हमारे कुछ पूर्वजों में कुछ अन्य त्रुटियां भी थी, जैसे कुछ 'चरस' पीते थे, कुछ भाँग खाते थे, कुछ अफ्यून खाते थे और कुछ मदिरा पान करते थे तो क्या उनको भी हमें कायम रखकर धार्मिक रूप देना चाहिए। सत्य तो सदा के लिए सूर्य–प्रकाश की भाँति अटल है और असत्य,हिमखण्ड के समान नाशवान। जो थेडा सा ज्ञान और विवेक का प्रकाश लगने पर पिगल जाता है। विस्थापन के बाद अब यह समय आ गया है कि जब हमें सत्य और असत्य धर्म–कर्म का सही निर्णय लेना चाहिए। एक प्रसिद्ध आश्रम में आमिष युक्त नैवेद्य बांटने की कुप्रथा आज भी चल रही है। जब वहाँ के भक्तों को इसका कारण पूछते हैं तो झट उत्तर मिलता है कि हमारे गुरु महाराज भी आमिषभोजी थे। जब उन से पूछा जाता है कि वे तो कुछ और भी तो करते थे, रात–दिन चिल्लम भी तो पीते थे, उस प्रथा को

कायम क्यों नहीं रखा, तो चुप रहते हैं। कोई भी शरीरधारी सर्वथा त्रुटि हीन नहीं हो सकता। यह बात जब ब्रह्म, विष्णु और देवररज के विषय में भी सत्य हो सकती है तो हम मनुष्यों की क्या बिसात। यदि किसी में निनानवे गुण भी हों तो भी कम से कम एक–आध अवगुण तो होना प्राकृतिक नियम के अनुरूप ही है। क्योंकि यह पँच तत्त्व का शरीर तो माया निर्मित है और माया स्वयं त्रिगुणात्मक है। अज्ञानी उसी एक–आध त्रुटि का सहारा लेकर अपनी व्यक्तिगत करुचि को संभल देते हैं। और अन्य गुणों को भूल जाते हैं। इस प्रकार न केवल स्वंय पाप कर्म करते रहते हैं अपितु अपने गुरु–महाराज को भी बदनाम करते हैं। भग्वान श्री कृष्ण स्वंय विष्णु अवतार थे, उनके मुखारविन्द से सम्पूर्ण वेदोपनिष्द् का नवनीत रूपी ज्ञान निकल पडा। वे यदि चाहते तो 'गीता' के अन्त में अर्जुन को कह सकते थे कि मेरा जीवन और कर्म ही तुम्हारे लिए प्रमाण है, परन्तु उन्होंने ऐसा कुछ नहीं किया, अपितु बोल दिया कि कर्तव्य–अकर्तव्य के लिए तुम्हें शास्त्र ही प्रमाण है:–

**"तस्मात् शास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्य**
**व्यवस्थितौ।"(भगवदगीता 17 अध्याय)**

और स्मरण रखिए कि शास्त्र केवल वेद–वेदाङ्ग ही है। संस्कृत भाषा में लिखा हुआ प्रत्येक ग्रन्थ शास्त्र नहीं है। पहले भी यह बात कही गई है कि पुराण, इतिहास, स्मृतियां उसी हद तक प्रमाण हैं जिस हद तक वे वेदों के साथ मेल खाती हैं। जो कुछ वेदविरुद्ध है वह शास्त्रविरुद्ध होने के कारण त्याज्य है। यह बात स्वंय मनुजी ने भी कही है और आदेश रूप में प्रस्तुत की है:–

**"या वेद बाह्याः स्मृतियाः याश्चकाश्च कुदृष्टयाः।**
**सर्वास्ताः निष्फला प्रेत्याः तमो निष्ठा हिताः स्मृतियाः।।"**

**(12.95)**

यह पुस्तक केवल धार्मिक दृष्टि से ही लिखी गई है। इसके

साथ राजनैतिक, सामाजिक या ऐतिहासिक कारण मिलाने की कुचेष्ठा नहीं करनी चाहिए। शास्त्रवचन कभी असत्य हो ही नहीं सकता। और शास्त्रवचन हैः—"यतो धर्मः, ततो जयः।"

**या "धर्मेण हतो हन्ति, धर्मो रक्षति रक्षित :"**

अतः सोचना चाहिउ कि धर्माचरण करते हुए भी यदि हम कष्ट पाते हैं तो अवश्य ही हमारे आचरण में कोई त्रुटि है। उस त्रुटि को समझना और दूर करना ही इस पुस्तक का मूल अमिप्राय है। इसी को दृष्टि में रखकर मैं अपने जाति बन्धुओं—भगिनियों से कर बद्ध होकर प्रार्थना करता हूँ कि अपने इस कष्ट भेगी और प्रताडित समाज का पुनः उस प्रतिष्ठित स्थान पर पहुँचने के लिए निम्न कुछ बातें की ओर ध्यान दें और अपने जीवन में उतारें। परिणाम शीघ्राति शीघ्र आप स्वयं देख सकेंगे।

1 हर प्रकार के मांसाहार रूपी कुकृत्य से परिवार और इष्ट जनों सहित बचे रहें, क्योंकि मन की शुद्धि केवल शुद्ध अन्न से ही सम्भव है। शास्त्र वचन हैः—

**"अन्नमयो हि मनः" जैसा खाओ अन्न वैसा होवे मन।**

मन की शुचिता के विना कोई भी धार्मिक अनुष्ठान सफल नहीं हो सकता।

2. अपने धार्मिक और सामाजिक कार्यों में किसी भी प्रकार का हिंसात्मक कृत्य आग्रहपूर्वक त्याग दें। जैसे किसी भी देवी—देवता के पूजा कार्य में, सम्माननीय अतिथियों को खिलाने—पिलाने के नाम पर, किसी रोगी का रोग निवारण करने के लिए औषधरुप से या भूत – प्रेतों को बलि देकर सन्तुष्ट करने के नाम पर या और किसी अन्य प्रकार के अन्धविशवास के नाम पर। विशवास रखिए कि ऐसा करके आपका आत्म—विशवास इतना दृढ़ हो जाएगा कि सब प्रकार की आदियाँ—यिाधियाँ स्वतः ही दूर भाग जाएँगी। याद रखिए कि कुरीतियों को सुरीतियों में बदलने के लिए कोई महूर्त्त

देखने की आवश्यकता नहीं। सुकर्म जितना शीघ्र किया जाये उतना ही अच्छा है। मैंने ये बातें अपने जीवन में उतारी हैं। तभी विश्वासपूर्वक आपसे प्रार्थना करता हूँ। ऐसा करने से यदि कोई पुण्यफल मिलेगा तो स्वयं आप ही लीजिए और यदि कोई पापफल मिलने की आशंका हो तो वह फल मैं लेने के लिए तैयार हूँ। आप निश्चिन्त रहिए।

3. गृहस्थ धर्म पालन करते हुए यदि जाने–अनजाने कोई हिंसा कार्य हो जाता है तो उसे स्वीकार कीजिए और परममिता परमात्मा से क्षमा प्रार्थना कीजिए। सच्चे मने से की गई क्षमा – याचना परमात्मा अवश्य स्वीकार करते हैं। अपने दुराग्रह को प्रमाणित करने की कुचेष्ठा कभी मत करिए क्योंकि ऐसा करने से स्वयं अपने आप को ही हानि पहुँचती है, दूसरों को नहीं। सदा स्मरण रखिये कि पापफल तो अवश्य भोगना पड़ता है। मांसाहार से **कत्ल का एक गुणा** पाप लगता है, धार्मिक कार्यों में मांस का प्रयोग करने से **दस गुणा** पाप लगता है। और इस कुकृत्य को सही प्रमाणित करने की चेष्टायें करने से **सौ गुणा** पाप लगता है–ये बातें सभी साधु–सन्तों के प्रवचनों में और शास्त्र अध्ययन में सुनी और पढ़ी जाती हैं। भोजन में मन्त्र द्वारा सब प्रकार की अशुचिताओं को दूर करना वर्णन किया गया है, परन्तु हिंसा रुपी अशुचिता को दूर करने के लिए कहीं भी कोई मन्त्र नहीं लिखा गया है। न ही किसी जप–तप या अनुष्ठान से ऐसा होना सम्भव है। केवल भोगने से ही इस पाप को दूर किया जाता है। मांसाहारी व्यक्ति यदि कभी शुद्ध और पवित्र प्रसाद भी खाए तो वह भी उसको उत्पीड़न ही करेगा। जैसे दूध को यदि खटाई मिले पात्र में डाला जाए तो वह दूध एकदम फट जाता है। अतः मेरी आग्रहपूर्वक प्रार्थना यही है कि पहले अपने आप को सर्वथा योग्य बनाइये, तब कहीं पवित्र नैवेद्य या प्रसाद लेने की चेष्ठा कीजिए। अन्यथा अर्थ का अनर्थ होने की आशंका बनी ही रहेगी।

# सातवाँ प्रसङ्ग

## अन्तिम – प्रार्थना

इस पुस्तक में मैंने जो कुछ भी निवेदन किया है, वह मेरे सम्पूर्ण जीवन के अनुभव, अध्ययन और सत्सङ्ग का निचोड़ है। आत्म विश्वास जागृत करने से सब त्रुटियों का निवारन करना सम्भव है। ये बातें करणीय हैं तभी तो आपसे वर्णन करता हूँ। उदाहरणार्थ ज्वाला भगवती हमारे परिवार की इष्ट देवी है। मैंने निरामिष रूप से पीले चावलों का प्रसाद श्रद्धा के साथ कितनी बार चढ़ाया है। बाहर यदि किसी ने आमिष युक्त द्रव्य चढ़ाया तो मैंने दृढ़ता के साथ उसका खण्डन किया है। एसा करके मैंने कभी भी यह अनुभव नहीं किया कि माता मुझ से रुष्ट हुई है। अपितु महसूस किया कि माता प्रसन्न होकर तत्काल मेरी प्रार्थना स्वीकर करती है और किसी न किसी प्रकार से मुझे दर्शन लाभ भी देती है। अनिष्ठ होने का प्रश्न ही नहीं उठता। कुछ पर्वों पर कुछ आश्रमों में जहां आमिष नैवेद्य बांटा जाता है, मैंने सबके सामने इसे अपवित्र कहकर ठुकराया। ऐसा करके कभी मेरा कुछ अनिष्ट नहीं हुआ, अपितु वैचारिक लाभ का अनुभव हुआ। एक विशेष बात मैं अपने जाति–बन्धुओं–भगिनियों से कहना चाहता हूँ कि सम्मान तो सबका करना चहिए, सब की बात सुननी चाहिए, परन्तु उसका अनुकरण केवल बौद्धिक कसौटी पर कसकर ही करना चाहिए। कुछ साधु–संतों महापुरुषों या विशेष व्यक्तियों के चमत्कारिक शक्तियों के भूल–भुल्लयों में कभी नहीं फँसना चाहिए। इन से केवल उलझन ही उत्पन्न होती है, सुलझता कुछ नहीं। याद रहे कि **धर्म शास्त्र में चमत्कार दिखाना वर्जित है। पाप माना गया है।** और चमत्कारों को व्यवसाय बनाना गिरावट का मूल कारण है। हाँ ! देव इच्छा से किसी के द्वारा निष्काम भाव से कुछ चमत्कार हो जए तो वह दूसरी बात है। और दार्शनिक रूप से चमत्कार दिखाना कोई बड़ी उपलब्धि भी नहीं है। ऐसे करने वाले

को ऊँचे स्थान पर पहुँचा हुआ भी नहीं मानना चाहिए। स्वामी विवेकानन्द जी अपनी 'राजयोग' नामक पुस्तक में लिखते हैं कि अष्टाङ्ग योग की साधना करने से पद–पद पर चमत्कारी शक्तियां उत्पन्न होना आरम्भ होती हैं। चौथे पाद अर्थात आसन और प्राणायाम सिद्ध होने पर अष्ट सिद्धियां पीछे–पीछे दौड़ना शुरू होती हैं। परन्तु इनके जाल में नहीं फँसना चाहिए। नहीं तो आगे का मार्ग अवरुद्ध हो जाएगा। सन्त श्री आसाराम बापू ने एक पुस्तक में लिखा कि —"एक साधु–वेषधारी एक दिन रोते – रोते मेरे पास आया और विनती करने लगा कि मुझे बचाइए"। मैंने जब कारण पूछा तो वह बोला कि पहले लोग मेरा बड़ा सम्मान करते थे क्योंकि उनके मन की बात बताकर उनकी उलझन सुलझाता था। अब मुझ से कुछ नहीं बन पाता अतः लोगों ने भी मेरा आदर करना छोड़ दिया है, इस प्रकार अब मैं कहीं का नहीं रहा।" बापू जी ओगे लिखते हैं कि — "मैंने सहजभाव से उसे पूछा कि क्या तुमने त्राटक प्राणायाम सिद्ध किया था, तो वह हैरान होकर बोला कि आपको कैसे मालूम है ? मैंने सरलता से उत्तर दिया कि इसी की सिद्धि से यह शक्ति आती है, परन्तु इसका प्रदर्शन करने से इसका नाश भी तो होता है"। अतः मेरे मित्रो ! याद रखो कि चमत्कार दिखाना तो प्रारम्भिक सीढ़ी पर स्थिर होना मात्र है, यह कोई ऊँची पदवी पर पहुँचने के लक्षण नहीं है। इसी शक्ति का कोई दुरुपयोग करे तो उसके लिए आगे जाने का रस्ता अवरुद्ध होगा। इसी कारण एक संत श्रीमान श्री पापा जी महाराज ने अपनी एक कश्मीरी कविता में कहा है कि – "अष्ट सिद्धि पत् लारनस, स्योद वुछक न्, ज़ाह" इसी कारण मैं कहता हूँ कि चमत्कारी व्यक्ति को पराकाष्ठा पर पहुँचा हुआ मानना नितान्त मूर्खता है। कटे हुए मुर्गे को जीवित करना या पकाई गई मछली को खाकर फिर वमन करके उसे जीवित हुआ दिखाना, ऐसी बातों का इतना ही महत्त्व है जितना किसी बाज़ीगर के तमाशे का होता है। प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध कार्य करना तो शास्त्रों के विरुद्ध ही है, अतः पाप है,

ऐसा कर्म करनेवाला पुण्यात्मा कैसे हो सकता है ?

प्रकृति ने कर्मों के अनुसार दो प्रकार के प्राणी बनाए हैं :– अहिंसक वृत्ति वाले जो शाकाहारी हैं और हिंसक वृत्ति वाले जो मांसाहारी होते हैं। प्रकृति अपने–अपने स्वभाव के अनुसार सबका नियन्त्रण करती है, परन्तु चौरासी लाख प्राणियों में मनुष्य एकमात्र ऐसा प्राणी बनाया गया है जिसे उसने अपने अनुरूप बनाकर शक्तियां प्रदान की हैं, इनही शक्तियों से वह नियमों में परिवर्तन भी ला सकता है परन्तु ऐसा करने की उसे मनाही की गई है। इसी कारण मनुष्य एकमात्र प्राणी है जो पाप–पुण्य के चक्कर में उलझा हुआ है, जबकि अन्य प्राणी केवल फल भोगते हैं और पुण्य–पाप अर्जित नहीं करते। शेर, भालू, कुत्ते, बिल्ली और पक्षी इत्यादि मांसाहारी स्वभाव के कारण अन्य प्राणियों को मारकर या खाकर भी केवल फल भोगते हैं, उन्हें पाप नहीं लगता, और गाय, भैंस, घोड़ा, गधा, भेड़, बकरी आदि पशु स्वभाव से शाकाहारी हैं, वे मांस को कभी सूँघते भी नहीं। ये भी इन योनियों में आकर केवल कर्मफल का भेग भेगते हैं, वे कोई पुण्य नहीं कमाते। मनुष्य एकमात्र ऐसा प्रणी है जो इस स्वाभाविक प्रक्रिया में परिवर्तन लाने में सक्षम है। शास्त्र के अनुसार प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन करना वर्जित है। थोड़ा ध्यान दें कि मनुष्य रचना और स्वभाव के अनुसार किस गणना में आता है। प्रकृति ने उसे शाकाहारी प्राणी बनाया है। या मांसाहारी ? यह जानने के लिए परखने के लिए प्रकृति ने एक कसौटी बनाई है। वह है उनके अङ्गों की संरचना और स्वाभाविक प्रक्रिया। मांसाहारी जीवों के दान्त नुकीले होते हैं। पाँव पंच नख (पंजा) रूप में होते हैं और वह जिह्वा से लप–लप कर पानी पीते हैं। इस के विपरीत शाकाहारी प्राणियों के दान्त समतल होते हैं, उनके पैर उछलने वाले नहीं; चलने वाले पाँव होते हैं और वे जिह्वा से नहीं अपितु होंठों से पानी पीते हैं। इस न्याय के अनुसार मनुष्य शाकाहारी प्राणियों की गणना में ही आता है। वह अपने

बौद्धिक बल से आहार–विहार में परिवर्तन तो ला सकता है, परन्तु ऐसा करना उसके लिए वाँछनीय नहीं है। क्योंकि ऐसा करने से वह पाप–पुण्य का अर्जन करता रहेगा और निरन्तर आवागमन की चक्की में पिसता जाएगा। आहार में विशेष रूप से परिवर्तन लाकर प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन करने का दोषी बनकर पापकर्म ही अर्जित करेगा और दुःख पायेगा। अतः मनुष्य को भी सदा–सर्वदा अपने स्वाभविक गुणों के दायरे में ही रहना चाहिए। प्रकृति में किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप करना सदा हानिकारक ही होता है, यद्यपि मृग–मरीचिका के समान तत्काल कुछ देर के लिए लाभकारी दिखाई देता है। अतः मैं कर बद्ध होकर बड़े विनम्र भाव से अपने भाई–बहनों से प्रार्थना करता हूँ कि उपरोक्त तथ्यों पर विचार–विमर्श करके, पूर्वाग्रह छोड़कर उचित परिणाम पर पहुँचकर अपना कर्त्तव्य निभाएँ और अपनी इस छोटी सी कष्टभोगी जाति को विलुप्त हाने से बचायें, क्योंकि अपने स्वाभाविक गुण–कर्मों के विपरीत आचरण से यह मुटठी भर जाति गर्त के कगार तक पहुँच रही है। स्पष्ट रूप से कहना होगा तो मैं डंके की चौट यह विनती करता हूँ कि सारस्वत ब्राह्मण नामधारी कश्मीरी पण्डित समाज को पूर्णतः और ज़िद्ध करके शकाहारी बनना चाहिये। शेष त्रुटियां स्वतः ही दूर हो जाएँगी। क्योंकि जब मांस रुचि ही समाप्त हो जायेगी तो मांस बलि चढ़ाने का विचार ही नहीं आयेगा, और इस कुकृत्य को उचित ठहराने की आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी। श्रद्धेय स्वामी लक्ष्मण जू महाराज (निशांत आश्रम वाले) ने भी ऐसे ही एक प्रश्न के उत्तर में स्पष्ट किया था कि मनुष्य को मांसाहार के कुकृत्य से आग्रह पूर्वक बचना चाहिये। 23–03–1982 में वे लिखते हैं – "मांस भक्षण की प्रथा कहाँ से आई, यह मुझे समझ नहीं आती। यह हमारी अनभिज्ञता है कि हमारे भाई इस घोर पाप के भागी बन रहे हैं। मैं मांस भक्षण की अनुमति कभी नहीं दे सकता हूँ। पता नहीं आजकल के महान पण्डितों को भी यह समझ क्यों नहीं आता कि हम क्या करते हैं?............ इत्यतः मैं हाथ उठाकर कहूँगा कि मांस

भक्षण की प्रथा समूल नष्ट होनी चाहिए।

आपका सुहृत
लक्ष्मण जू, ईश्वर आश्रम

**(द्रष्टव्य मानवधर्म का मूल मन्त्र– अहिंसा (पृष्ट 64–65))**

हैरानी और कष्ट की बात तो यह है कि जन साधारण ही नहीं कुछ साधु–सन्तों का रूप धारण करने वाले लोग या आश्रमों के अभिमावक भी इस नारकीय पापकर्म के भागी बने हुये हैं।

'महाजनों येन गता स पन्थः' इस उक्ति के न्याय से उन्हें अपने कर्मों में अधिक सावधान रहना चाहिये था। पनन्तु उनका कर्म तो बिल्कुल विपरीत दिशा में चल रहा है। उनके विषय में मैं क्या कहूँ ? एक साधक कश्मीरी कवि श्री जानकीनाथ 'जीवन' की एक लीला का एक अंश ही उद्धृत कर सकता हूँ।———

**"अभक्ष बूज़ येम्य ख्यव या ख्यावनोव।**
**पोज़ वनय साधः नाव तॅम्य मन्द्छोव।।"**

कुछ लोग प्रश्न करते हैं कि यदि मांसाहार ही सब पापों की जड़ है तो जो लोग ये पाप नहीं करते वे क्यों कष्ट भोगने पर विवश हो जाते हैं ? इस शडकां के उत्तर में हम केवल इतना ही कहेंगे कि——"गुन्दुम के साथ गुण भी पीसा जाता है" या "एक मछली सारे तालाब को गन्दा करती है।" ज़रा विचार कीजिये कि ऐसे शुभ कर्मी लोगों की संख्या कितनी है ? दूसरी बात यह है – कि मल–मूत्र से भी बड़कर शव दर्शन की अशुचिता मानी गई है। मल – मूत्र की अशुचिता तो धोने मात्र से दूर हो जाती है परन्तु शवदर्शन की अशुचिता स्नान किए बिना दूर नहीं होती। और शव यदि किसी अपने सगी–संबन्धी का हो तो दस दिन का अशौच लग जाता है। इन दिनों कोई देव–पितृ क्रिया करना भी निषिद्ध है। अब ज़रा विचार कीजिये कि जो लोग किसी मृत प्राणी का यही

शव अपने पेट में भर देते हैं, उनका अशौच कब दूर हो जायेगा ? और क्या ऐसे व्यक्तियों द्वारा किया गया कोई देव–पितृ कर्म स्वीकार्य हो सकता है ? ऐसे ही दुष्कर्मी लोग तो पवित्र आश्रमां में भी जाते हैं और जप–तप यज्ञ–याग क्रिया में हाथ भी बटाते हैं, क्या ऐसे अशुचिपूर्ण लोग इन पवित्र स्थलों को भी अपवित्र बनाने के दोषी नहीं बनते ? अपवित्रता फैलाकर पवित्र लोगों को भी गर्त में डुबोने का दुष्कृत्य करके मान लो वे एक प्रकार से घोषणा करते हैं।

"हम तो डूबे हैं सनम, तुम को भी ले डूबेंगे" अपवित्र शरीरधारियों के हाथों से बना और वितरण किया हुआ पवित्र प्रसाद भी अमृत होकर विष का काम करता है। अब आप पूछेंगे कि क्या ये अपवित्र शरीर कभी भी पवित्र नहीं हो सकते हैं ?

उत्तर में मैं कहूँगा कि अवश्य पवित्र हो सकते हैं यदि वे प्रायश्चित करें। पूज्यनीय सन्त श्री आसाराम बापू ने एक प्रवचन में वसिष्ट स्मृति का हवाला देकर कहा है कि सच्चे मन से पश्चाताप करके यदि अभक्ष्य भक्षी जन पाँच दिन तक लगातार पंचगव्य को ग्रहण करते हैं तो उनका शरीर भी पवित्र बन जाता है।

**"गोमूत्रम गोमयं चैव क्षीरं दधि घृतं तथा।**
**पंच रात्रं तदाहारः पंच गव्येन शुद्धयति।।" (वसिष्ट स्मृति)**

ऐसे पाप कार्मों के अनिष्ट से बचने का एक मात्र सरल उपाय यही है कि सम्पूर्ण समाज ज़िद्ध करके शाकाहारी बने। और यही करने के लिए मैं अपने समाज को हाथ जोड़कर आग्रहपूर्वक प्रार्थना करता हूँ।

एक बात और । धार्मिक रूप से प्रत्येक प्रकार का किया हुआ क्रिया–कर्म तभी सिद्ध होता है जब वह पूर्णरूप से शास्त्रानुसार किया गया हो। शास्त्रों में पुरुषों और स्त्रियों के लिए अलग–अलग विधान लिखे गये हैं। परन्तु उन लोगों के लिए कोई विधान वर्णित

नहीं है जो न पुरुष हैं और नही स्त्री। अब कलियुग की विडम्बना देखिये कि धर्म से उदासीन (Secular) आधुनिक शासकवर्ग समाज की कुछ समस्याओं को हल करने के लिए नित नई योजनाएँ बनाते रहते हैं, जिनसे पुरुषों का पुरुषत्व और स्त्रियों का स्त्रीयत्व ही छिन जाता है। जनसंख्या को संतुलन में रखने के लिए नलबन्दी और नसबन्दी का रात–दिन प्रचार दूरदर्शन और अन्य प्रचारतन्त्र में होता रहता है। खेद से कहना पड़ता है कि इस दुष्प्रचार का अधिकतर शिकार हिन्दू समाज ही हो गया है। और इस समाज में भी मेरा यह कश्मीरी पण्डित समाज अधिकतम शिकार हुआ है। इतना कि मान लो यह समाज स्वयं ही अपना अस्तित्व समाप्त करने पर तुला हुआ है। अभक्ष्य अन्न खाने से मन अपवित्र हो जाता है और उसका परिणाम बुद्धिनाश के रूप में निकलता है। ऐसा होने पर तमोगुणी बुद्धि छा जाती है और मनुष्य सत्य को असत्य और असत्य को सत्य मानने लगता है। महात्मा कबीर भी इस उलटी गङ्गा को बहते हुए देखकर रो पड़े थे, जब वे कहते हैं कि "देख कबीरा रोया" जनसंख्या का नियन्त्रण करने के लिए ब्रह्मचर्य पालन की रीति सर्वोत्तम हानिरहित रीति है। इसके विपरीत जिन तरीकों का सहारा लिया जा रहा है उनसे मनुष्य योगी के बदले पशुओं के समान भोगी बनता जा रहा है और परिणाम सबके सामने है। इतना ही नहीं इस अनैतिक, अधार्मिक रीति को अपनाने से मनुष्य पुरुषत्व और स्त्रीयत्व के गुणों से वंचित हो रहा है। ऐसे बनकर उनके धार्मिक कृत्य कितने फलदायी होते हैं इस पर मैं अपनी ओर से कुछ न कहकर केवल आधुनिक जगत के श्रेष्ठतम विचारक, विद्वान और सिद्ध पुरुष स्वामी रामंसुखदास जी के विचार प्रस्तुत करता हूँ – वे लिखते हैं :– "जैसे ब्रह्म हत्या महापाप है वैसे ही गर्भपात भी महापाप है.................. ब्रह्म हत्या से जो पाप लगता है उससे दुगुणा पाप गर्भपात से लगता है

"यत्पापं ब्रह्म हत्यायां, द्विगुणं गर्भपातने"

पराशर स्मृति 4/20

जो नसबन्दी द्वारा अपना पुरुषत्व नष्ट करते हैं, वे नपंसुक (हिजड़े) बन जाते हैंउनके द्वारा पितरों को भी पिण्ड–पानी नहीं मिलता है। (कात्यायन श्रौत सूत्र 1–1–5)

(महापाप से बचो नामक पुस्तक पृष्ट 7,19)

अतः स्मरण रखिये कि नसबन्दी–नलबन्दी कराने वाले हिजड़े कहलाए जाने वाले, प्रत्येक धार्मिक क्रिया–कर्म के अधिकार से वंचित रह जाते है। ज़रा ध्यान दीजिये ऐसे अनाधिकारी जनों की संख्या हमारे इस कश्मीरी पण्डित समाज में कितने प्रतिशत हैं ? और इसका दुष्प्रभाव हम पर कितना पड़ता है ? यही कारण है कि हम अपना कल्याण होने के निर्णय लेने के विवेक से ही वंचित हो रहे हैं। यह बात हर प्रकार से हम पर लागू हो रही है, केवल धार्मिक रूप से ही नहीं। राजनैतिक और सामाजिक रूप से हम सही नेतृत्व चुनने में विफल हो रहे हैं। परिणामतः कष्ट भोगते रहते हैं। अतः मैं यही प्रार्थना करूँगा कि हमारा प्रथम कर्त्तव्य यही है कि हम अपने बुद्धिबल को पवित्रता द्वारा सुरक्षित रखें। भगवद्गीता अनुसार 'बुद्धि नाशात् प्रनश्यति'यह बात शास्त्र सम्मत है कि अभक्ष्य भोजी का बुद्धिनाश हाता है और वह सही निर्णय लेने में असमर्थ बन जाता है बुद्धि नाश ही इस बात का मुख्य़ कारण है जो हम स्वयं ही अपनी आगामी सन्तति पर कुठाराघात करने पर तुले हुए हैं, चाहे वह परिवार नियोजन के नाम पर अपने ही पुरुषत्व या स्त्रीयत्व के नष्ट करने की बात हो या प्रगतिशीलता या धर्मनिर्पेक्षिता के नाम पर अन्तर्जातीय विवाह संस्कार करने की बात हो। विजेश्वर पंचांग जो हमारा धार्मिक मार्गदर्शक है के वर्तमान सम्पादक पं० ओमकारनाथ शास्त्री अपनी लिखी हुई पुस्तक '**हम और हमारे संस्कार**' के पृष्ट 122 पर लिखते हैं – "भारतीय संस्कृति में अन्तर्जातीय विवाह का निषेध है। हम सभी कश्मीरी पण्डित सारस्वत

ब्राह्मणों के साथ ही विवाह कर सकते हैं। दूसरी जाति य दूसरे सम्प्रदाय के साथ नहीं। दूसरी जाति में विवाह करने को 'अन्तर्जातीय विवाह' (Intercast Marriage) कहा जाता है। अन्तर्जातीय विवाह का हिन्दू प्रथा में निषेध है। धर्मशास्त्र में भी इस बात का पूर्ण खण्डन किया गया है। धर्मशास्त्र में लिखा है कि विवाह निश्चित करने से पहले लड़के तथा लड़की के माता – पिता को किन–किन बातों की ओर ध्यान देना चाहिए। उसमें सबसे पहले लड़के तथा लड़की का गोत्र देखना चाहिए। दोनों का एक ही गोत्र नहीं होना चाहिए। माता पिता का कर्तव्य है कि उस वंश की पूर्णतः परीक्षा करे जिस वंश के साथ नया सम्बन्ध स्थापित करने जा रहे हैं। इस विषय में लिखा भी है –

"कुलमग्रे परीक्षेत मातृतः पितृतश्चेति" अर्थात माता–पिता का कर्तव्य है कि वे सबसे पहले माता और पिता के कुल के विषय में पूछताछ करें। इसके अतिरिक्त भी लिखा है –

**"कुलं च शीलं च वपुर्वयश्च विद्यां च वित्तं च सनाथतं च।**
**एतान् गुणान् सप्त परीक्ष्य देया कन्या**
**बुधैःशेषमचिन्तनीयम्।।"**

अर्थात्–लड़की के मां–बाप का कर्तव्य है कि वे वर के कुल, शील, शरीर, आयु, विद्या, वित्त तथा साधन–सम्पन्नता – इन सात गुणों की परीक्षा करके फिर कन्या का विवाह करना चाहिए। परन्तु आजकल देखने में आता है कि माता–पिता केवल लड़के को देखते हैं, कि लड़का कमाता है और अपनी लड़की का विवाह उसके साथ कर देते हैं, चाहे वह किसी भी जाति अथवा गोत्र के साथ सम्बन्ध रखता हो। वे अपनी वास्तविकता की ओर नहीं देखते हैं, जिस कारण हमारे बच्चों का भविष्य अन्धकारमय हो रहा है। . ..................... यदि यह प्रथा ऐसे ही चलती रहेगी तो निशचय रखिये कि कुछ वर्षों में ही हमारी दशा बहुत ही दयनीय हो जायेगी। जो हमारे समाज के लिए खतरे की घण्टी सिद्ध होगी।

आजकल हम देखते रहते हैं कि अन्तर्जातीय विवाहों की दौड़ ज़ोरों पर है जो हमारे जड़ों को काटने पर लगी हुई है। इसमें हमारे बच्चों का कोई दोष नहीं अपितु दोष है हम बड़ों का, क्योंकि अपने बच्चों को हमने वे संस्कार ही नहीं दिए हैं जिससे वे इन गतिविधियों से दूर रह सकते। देखने में आता है कि जिस किसी ने भी अन्तर्जातीय विवाह किया है उसका परिणाम आमतौर पर 'चिन्ताजनक' ही निकलता है। हमारा कर्तव्य है कि हम अपने बच्चों को अपनी संस्कृति, सभ्यता तथा संस्कारों के विषय में पूरी जानकारी दें ताकि वे अनुशासन के बन्धन में रह सकें।"

कश्मीरी पण्डित सारस्वत ब्राह्मण होने के कारण मानव समुदाय के सर्वोच्च स्तर पर है। निम्न स्तर से उच्चस्तर पर ले जाने की बात तो बोधगम्य हो सकती है, परन्तु उच्चस्तर से लुड़क कर निम्नस्तर पर जाने की बात सर्वथा अनिष्टकारी ही हो सकती है। इस बात का सदा ध्यान रखना चाहिए।

बुद्धिबल को सुरिक्षत रखने का सर्वोत्तम उपाय है "पवित्र आहार"। अतः मेरे बन्धुओं ! हमें शाकाहारी ही बनना पड़ेगा। यह बात हम जितनी शीघ्रता से समझें और इस पर अमल करें, उतना ही हमारे लिए शुभंकर होगा।

मुख्य रुप से यह पुस्तक लिखने का अभिप्राय है इस प्रबुद्ध परन्तु प्रताडित कष्ट भोगी समाज का कष्ट निवारण करके कल्याण कराना है। मैं विनम्र भाव से यह कदापि दावा नहीं करुँगा कि मेरा यह सुझाव समस्या का एकमात्र समाधान है, परन्तु यह अवश्य कहूँगा कि यह **एकमात्र बुनियादी समाधान है** । यदि समाज के प्रबुद्ध जन, संतगण, विद्वान और अन्य समाजिक कार्यकर्ता सप्रमाण कोई अन्य सुझाव प्रस्तुत करेंगे तो मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि उसपर विचार – विमर्श करके अपनी योग्यतानुसार प्रचारित करुँगा सब लोगों की राय और प्रतिक्रिया का मैं सदा प्रतीक्षारत रहूँगा । परमपिता सबको सद्‌बुद्धि और सत्प्रेरणा से अनुग्रहीत करके सबका

कल्याण करें । केवल यही कामना करता हूँ ।

सर्वे भवन्तु सुखिनः
सर्वे सन्तु निरामया ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु
मा कश्चित् दुःख भागभवेत् ।।
ओं शान्तिः ! शान्ति : !! शान्तिः !!!

ओम शम्

## परिशिष्ट –1

### दो शब्द

यदा यदा हि धर्मस्यग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम ।।
(भगवतगीता)

जिस परिस्थिति की ओर हम इस समय जा रहे हैं उसके लिए श्री त्रिलोकी नाथ पण्डित 'वानप्रस्थी' की लिखी हुई यह पुस्तक एक पथ प्रदर्शक का कार्य कर सकती है, वर्तमान समय में इस पुस्तक का प्रकाशित होना हमारे लिए बहुत ही ज़रूरी है ताकि हम अपनी विडम्बनाओं के विषय पर ज़रा ध्यानपूर्वक सोच सकें ।

इस पुस्तक में वैदिक पद्धति तथा तान्त्रिक पद्धति को जिस प्रकार समझाने का प्रयत्न किया गया है वह बहुत ही सराहनीय है जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण हम आजकल देखते भी हैं, उन्होंने प्राकृतिक नियम को भी विस्तार पूर्वक समझाने का प्रयास किया है विशेष तौर से कश्मीरी पण्डितों के संस्कारों शुभपर्वों पर मांसाहार के विषय में विस्तार पूर्वक व्याख्या की गई है ।

धर्मशास्त्र तथा पुराणों के विषय में जो विचार उन्होंने व्यक्त किए हैं तथा धर्मशास्त्र को जिस प्रकार उन्होंने खोल के जनमानस तक पहुँचाने का प्रयास किया है वह बहुत ही प्रशंसनीय है।

कश्मीरी पण्डितों के रीति–रिवाजों को उन्होंने वैदिक पद्धति तथा तान्त्रिक पद्धति से विस्तार पूर्वक व्यक्त किया है । लेखक ने इस पुस्तक में हमारे समाज के सभी विषयों को विस्तार पूर्वक समझाने का प्रयास किया है जो अपने में एक उत्कृष्ट प्रयास है तथा समय की आवश्यकता है। मुझे पूरा विश्वास है कि हमारा समाज लेखक के इस थोड़े से प्रयास से अवश्य लाभन्वित होगा ।

**ओंकार नाथ शास्त्री**
**सम्पादक विजयेश्वर पंचांग**
**जम्मू–कश्मीर**

## परिशिष्ट – 2
## ओं श्री गुर्वे नमः

टी. एन. पण्डित 'वानप्रस्थी' लिखित लेख (कश्मीरी पण्डित समाज) जितना प्रबुद्ध उतना कष्टभोगी क्यों ?मेरी नज़रों से गुज़रा – एक एक पन्ने का अध्ययन करने के पश्चात मुझे ऐसा लगा कि लेखक की अन्तर वेदना साफ शब्दों में प्रस्फटित हो रही है – बेबाक लेखक की भांति जीवन के कठोर सत्य की रेखाओं को अंकित करने का भरसक प्रयास कर रहा है । लेखक ने अपने कश्मीरी समाज की बात की है, उनके अनुसार कश्मीर बुद्धिजीवी आकाश को छू सकता है और अपना लोहा मनवा सकता है बाह्य संस्कारों ने आस्था के प्राणों पर कलहाडा मारा है और बारम्बार वार कर रहा है और हिंसक प्रवृत्ति ने हमारे पवित्र देवस्थानों, रीतियों, आन्तरिक मनः स्थिति और जीवन के यर्थाथ को कुबड़ा बनाके रख दिया है।

सत्य यह है कि सारस्वत ब्राह्मण वही होता है जिसकी अन्तरात्मा में सम्पूर्ण देवालय और तीर्थालय वास करते हों ।परन्तु वेदों का अध्ययन न करके हमने संस्कारों, मर्यादाओं का खंडन किया है।

श्री टी. एन. पण्डित के मानसिक सरोवर में मुस्कुराते और सुन्दर कंवलों में नव प्रभात का आगमन दिखाई देता है पर समाज की तार तार हुई चित्रकारी को देखकर उनके अंग अंग में दर्द हो रहा है। मास सारस्वत ब्राह्मण के लिए विष से कम नहीं । शिव शव नहीं खाता – एक लम्बी यात्रा में उनका मिशन बेयमानी और अन्याय की चक्की में पिस्ता नज़र आता है । प्राणों के सुन्दरतम भवन में आत्मयोगी रहते हैं न कि भूत–पिशाच। हमारा सत्य धर्म कुकर्मो, कुवासनाओं तथा थोथी और खोखली मर्यादाओं ने मृत्युशया पर लिटा दिया है।

वास्तव में इस्लामी आक्रमण–कारियों के अत्याचार, अन्याय तथा मारदहाड ने कश्मीरी पण्डित समाज की तस्वीर ही बदल डाली, पर हम भी सत्य प्रकाश को न देख पाये क्योंकि हमने आखें ही मूँद लीं । शिव – त्रिक शास्त्र के अभाव के कारण हमारी मान – मर्यादा का शब्दकोश ही खाली हो रहा है । सत्य यह है कि अभी हमने स्वार्थ से नाता नहीं तोड़ा है। साधुता उसी में वास करती है जिसमें समानता आती है, यह समानता सम–मनन, सम–चिन्तन और सम–रस तथा द्वेष और इर्षा का खंडन करने से ही आती है, पर जब हिंसक सामग्री को हम भोजन बनाते हैं, हमारा मन, सोच मिथ्याचारियों की भांति व्यवहार करता रहता है जिस से असाधुता पैदा हो जाती है और जो कुकर्मों और घोर पापों को सींचते हैं । लेखक का भरसक प्रयास है कि कश्मीरी पण्डित सच्चे अर्थों में सत्यार्थ प्रकाश का प्रकाश भगवान बने । हिंसक प्रवृत्ति के त्याग से ही "अहिंसा परमोधर्मः" का भव्य स्वरूप प्रस्फुटित हो जायेगा और धर्म की गरिमा ही प्राणों की परकाष्ठा का श्रृंगार बनेगा – और कश्मीरी हिन्दू समाज सम्पूर्ण देश का पथ–प्रदर्शक बन जायेगा, पर विडम्बना यह है कि बुरी लत जब लग जाती है तो उससे मुख मोड़ना या परित्याग करना प्रश्न चिन्ह का रुप धारण करता है ।

मेरे विचार में यह बिल्कुल गलत रीति है कि शिवरात्रि में मांस खाया जाता है । यह मांस मछली खाना किसी शास्त्र या पुराण में नहीं लिखा है । कहते हैं कि जैसा अन्न खाते हो वैसा ही मन पाते हो यदि सात्विक रस–पान न हो तो चिन्तन प्रणवा–बुद्धि की खोज नहीं कर सकेगा । हमारे ऋषि – मुनि और गुरुजन सात्विक आहार करके समभाव की परा शक्ति और भेदन शक्ति के स्वामी बन गये, धर्म के आन्तरिक मर्म की गहराई में जाकर कुंडलिनी की तेज़गामी परिक्रमाओं पर भी नियंत्रण पा गये और त्रिकालदर्शी बन गये ।

मैं गीताजी की तीसरी अध्याय के 35वें श्लोक पर ही शब्दवानी को विराम देना उचित समझता हूँ ।

**श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।**
**स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ।।**

किसी भी स्थिति में स्वधर्म अति उत्तम है, माना कि यह गणरहित ही क्यों न हो, वास्तव में अपना ही धर्म हमें सत्यधर्म की ओर ले जाता है और मेरे विचार में वही मानव धर्म को सींचता हैं। "स्वधर्म में प्राण त्याग करना कल्याणकारक है, परधर्म भय देने वाला है अर्थात अपना स्व छोड़कर पराया अपनाकर मानव भटकता फिरता है और भयग्रस्त होकर नाश का कारण बन जाता है ।

धर्म और न्याय एक ही सत्य के दो रुप हैं । जहां धर्म है वहां न्याय है और जहां पाप है वहां अन्याय। वास्तव में टी. एन. पण्डित मानव काया में इन्कलाबी सन्त है और रोम रोम में धर्म तेज आकाश को छू रहा है प्रभु करे इन्हें हस महान मिशन में सफलता मिले ।


आनन्द स्वामी

पी. एन. भट्ट गरीब भाई जी

144.संजीवनी कुटीर

कृष्ण सत्संग भवन

वज़ीर बाग, सूर्य विहार बोड़ी जम्मू – 180002

फोन : 0191–2504369

मो. : 9419191510

## परिशिष्ट – 3

प्रस्तुत पुस्तिका द्वारा महान विद्वान श्री त्रिलोकी नाथ पण्डित (लेखक) ने कश्मीरी पण्डित समाज में मूलभ्रान्तियों तथा गलत विचारधारा को बदलने का जो प्रयास किया है वह प्रशंसनीय है । शास्त्रों का हवाला देकर जिस सरल भाषा में 'मांस भक्षण' जघ न्य अपराध बताया गया है उसको शान्त चित्त हो के समझने की आवश्यकता है ताकि इहलौकिक और पारलौकिक उद्धार के लिए मार्ग प्रशस्त हो जाये जो कि मनुष्य का वास्तविक ध्येय होना चाहिए । अन्यथा तो दुष्परिणाम ही होंगे । मनु जी ने मनुस्मृति में

कहा है :–

**यावन्ति पशुलोमानि तावत्कृत्वो हि मारणम ।**
**वृथा पशुघ्नः प्राप्नोति प्रेत्य जन्मनि् जन्मनि ।।**

**(5.38)**

**अर्थात** :– जिस पशु की हम हत्या करते हैं और जिसका मांस हम खाते हैं उस पशु के शरीर पर पाये जाने वाले बालों को गिन लो उतने ही जन्मों में हम उस पशु के द्वारा मारे जायेंगे ।

**माता अपर्णा देवी**
**स्वा. स्वयमानन्द आश्रम**
**माता उमादेवी मन्दिर**
**लोवर रूपनगर, मुट्ठी, जम्मू ।**

## परिशिष्ट — 4

**13-03-2012** **INNER VOICE**

### SEARCH FOR DIVINITY

'Live and Let Live' is the best philosophy of life. Hence, will you mind if I ask you whether you would like to be killed ? Idiotic question, but it has a moral message. The issue is if you don't like to be killed, then why are you a partner (by eating animals' flesh) in killing animials for the satisfaction of your taste ?

Sant Rajinder Singh raises this point in his book, 'Spark of the Divine'. If you love your self, then there are three things that need immediate attention, that killing is a sin, that non-vegetarian is not good for health, and that we are here for the progress of our soul and rise spiritually so that our mission on this planet gets completed or moves towards completion. the sant has several reasons why we humans need to be vegetarians. The foremost is that spiritualism believes in non violence and eating aniimals flesh is your direct participation in violence. One must keep in mind that a non-vegetarian can never be at peace with himself and the world. His body is filled with vibes of hatred and violence.

Most non-vegetarians are ignorant of the need to not eat meat, but there are others who believe that animals are not conscious beings and hence can be killed. Can there be a more foolish argument ?

We are what we eat ! when we eat animals, we become no better than animals because we give out the vibrations of what we eat. Their hormones becomes a part of our body system and insanity sets in.

Non-vegetarianism also violates the principle of love for animals, the environment and the planet. Our existance can't be peaceful if the principle of co-existence is threatened.

Non-vegetarianism also violates the Law of Karma. As the

author says, the Law of Karma can be understood as the ethical application of the third Law of physics ; For every action, there is a reaction. In this case non-vegetarianism means straying from the path that leads to the divine spark.

*P.P. Wangchuk*

**4-06-2012**

**INNER VOICE**

## परिशिष्ट – 5

## WE ARE WHAT WE EAT

Many of us are raised with the common myth that we will become weak if we don't eat fish or meat. But we can discredit this myth if we look at an elephant that not only survives on just leaves and branches but also thrives in good health.

Like elephants, some of the strongest animals of the world are strictly vegetarian. When a person realises this, his spiritual nature begins to awaken; he starts experiencing many changes from within.

One of them is the development of a sensitivity through which the relationship between his body and his soul takes a new meaning and importance.

The inner vision of the soul reveals aspects to his personality that he did not know or felt before. His subtle energies become more tangible and he begins to judge for himself whether the food his body has ingested is really healthy for him or not.

The question that arises now is "why follow a vegetarian diet ? " The answer is simple. Human beings by nature are non-violent. The true nature of the human soul is peace and tranquility.

Spiritual energy accumulates while practising non-violence. In this world, there is no much anxiety, tension, irritability and injustice which can be attributed to the dietary habits of human beings, because some of the food that one eats has all these vibrations of violence and negativity.

Hence, it is advisable to avoid eating food that comes through violence or the act of killing. A healthy body is one that is kept clean both from within and outside. When we feed the mind as well as the body with love, the atmosphere around us will also become peaceful and loving to livein, because our mental state has a definite and direct impact on the atmosphere around us.

There are many benefits in preparing food in a peaceful and happy mental state. And, when we eat food prepared in such a manner, we will feel happy and positive. That will surely, in turn, improve the quality and long evity of Life

***Rajyogi Brahmakumar***
***Nikunj.***

"दैनिक हिन्दुस्तान टाइम्स"साभार

# परिशिष्ट – 6

## ہرے کرشنا ، ہری اوم تت سَت

شری بی. ایل پنڈتا وان پرستی

07-12-2011

### کشمیری پنڈت سماج : "جتنا سلجھانا چاہا اُتنا الجھتا گیا"

اِس انمول اور دُرلبھ موقع بیتے تحریر کو پڑھنے کے بعد مجھے ایک بار پھر دردھ وِشواس ہو گیا ۔ کہ ہر ایک جیو آتما وندش یونی میں آنے کے بعد اسی یونی میں آئے ہوئے اچھے یا بُرے کرموں کے پھل سوروپ مطابق اس یونی میں "جس میں نئے کرم کرنے کا ادھیکار ہے" بوئے ہوئے بیج سے نکلے ہوئے میٹھے رسیلے پھل یا کڑوے زہریلے پھلوں کا ذائقہ چکھنے کے لئے بھن بھن یونیوں میں آتے رہتے ہیں یعنی چوراسی لاکھ یونیوں کے آواگمن کے چکر ویوہ میں پھنس کر رہ جاتے ہیں ۔ چونکہ اس وندش یونی میں سے بھی مانو دیک وندش یونی یعنی کشمیری برہمن یونی جو کہ جوہدیش سنسکاروں والی شریر پر تلک رکھنے کے سمان مطابق شرومنی سُسنسکرت یونی مانی گئی ہے ۔ بار بار دیکھنے میں شانتی پورک ، آچار ، وچار سے بھرپور کے علاوہ "شروے بھونتو سکھنا ، شروے سنتو نرامیا ، شروے بھدرانیہ پشیانتو ما کشچت دُکھ بھاگ بھویت" پر چلنے والا سماج وقتاً فوقتاً نا قابل برداشت ظلم ، جبر اور زیادتیوں کا شکار ہوتا آرہا ہے ۔ اسی کارن کو جاننے کے لئے "ایک انمول نشتیہ" اسی سماج سے وابستہ ایک بہو مولیہ رتن یعنی شری ترلوکی ناتھ جی پنڈتا "وان پرستی" نے تیار کیا ہے ۔ "وان پرستی مہاراج" کسی پرچے کا محتاج نہیں ہے ۔ کیونکہ نام ہی جو ہے "ترلوکی ناتھ" انہوں نے اپنی تحریر میں سماج کی درد بھری اور ناقابل برداشت پیڑا ، پیڑا کا کارن ، اور اس کے حل کے علاوہ اپنے اندر چھپے ہوئے اس گہرے درد بھری پیڑا کو اُجاگر کیا ہے ۔ چونکہ اِن کو اس سماج میں اُتپن ہوئی خرابیوں اور پاپ کرموں سے پیدا ہوئی ۔ اب میری بھی اس سماج میں جنمے ہر ایک بہو مولیہ رتن سے ؟ نمر نویدن کرتی ہے ۔ کہ ہم اپنے اندر اُتپن ہوئی کو کرتی کریاؤں کو تیاگ کر اپنے آپ کو اُن ریشیوں ، مہاتماؤں اور سنتوں دھاریوں کے سچے شش بنانے کے قابل بنائیں ۔ جن کے آشیرواد سے ہم بار بار مہا سنکٹ سے دوچار ہونے کے باوجود زندہ ہیں ۔ تاکہ آنے والا کل کا زمانہ ہم کو پھر اُسی

P.T.O

طرح یاد نہ کرتے جیسے کہ آج زمانہ "پنڈتوں" کو یاد کرتا ہے۔ اب میری بھی
تمناؤں میں سے بڑی تمنا ہے کہ نئی نسلیں شاردا پیٹھ و ناگ بل جانے کی سیر ہمیشہ
پڑھیں کا ہر کام ہر جگہ جاری کرنے کا اتنا تجربہ کریں۔ مگر ادھر، ادھر، ادھر +
پنڈت ناتھ جی نے اس انمول اور ذریعہ تحریر کو بھائی کے دور میں لگایا کہ جو کوئی بھی
اس نادر نسخہ کو پڑھے گا۔ وہ بلا کسی شک و شبہ کے اپنی نظروں سے
کشمیری پنڈتی کی شناخت سے واقف ہو جائے گا اور اسی نقش و قدم پر چلتا رہے گا
(جس نقش و قدم پر چل کر ہمارے پُرکھوں نے زندگی بسر کی تھی اور آج ہمیں انہی شناختوں کے
شناختوں کو اپنانے پر گرد ہوتا ہے۔ باقی ماسٹر پنڈت ناتھ جی نے شعلوں کے تحت اپنے سینے
میں چھپے ہوئے اور تپ رہے درد کو اس طرح بیان کرکے تحریر میں لایا ہے کہ جب سے
انہوں نے اس نا تواں شمشار میں آکر ہوش سنبھالا ہے۔ انہوں نے کشمیری پنڈتوں کو
کبھی نہ کسی ذہنی یا جسمانی شناخت میں مبتلا ہی ہوتا پایا۔ ۱۹۴۷ء سے پہلے اگرچہ شہری حقوق
نہیں تھے (مگر اندرونی طور پر مالک جنتاؤں کے دباؤ کے تلے دب کر جیوں ہی جی رہے دیکھا
تھے۔ سیاسی طور اور دنیاوی نظروں سے اگرچہ ہمارا ملک فرنگیوں کے شکنجوں سے آزاد
ہوا) مگر ملک دو حصوں میں بٹ گیا۔ اور کشمیری پنڈتوں کے لئے اور بھی شناخت سے کھلواڑ
(دن آنے شروع ہو گئے۔ اور یہ شناخت اس وقت تھا شناخت کا روپ دھارن کر گیا۔ جب
سال ۹۰-۸۹ء میں اس شاردا پنڈت سماج سے وابستہ لوگوں کو چن چن کر مارنے کے بعد
بچے کھچے افراد کو گھروں سے بے گھر کرکے وادی سے بھی باہر کیا گیا۔ آزاد ہندوستان
کی حکومت کے سائے میں رہنے کے باوجود، تڑپتے، ترستے، سسکتے، جلاتے اور
روتے روتے اپنے ہی دیش میں رفیوجی بن کر ذلت اور مصیبتیں بھری زندگی
گزارنے کے لئے اس قدر کیپی مت بھری شاردا سماج سے وابستہ لوگوں کو مجبور ہونا
پڑا۔ مجبور اس لئے کہہ رہا ہوں۔ کیونکہ اس وقت ہماری ماتاؤں، بہنوں اور
بیٹیوں کی عزت داؤ پر لگی ہوئی تھی۔ شکر ہے پرم پتا پرمیشور کا کہ ہم اس میں
(یاد کرو اس وقت کے وہ نعرے جو لکھنے کے قابل نہیں ہیں) یعنی اُلٹی P.T.O.

سے عزت بچانے میں سنبھال رکھے۔ لیکن دشمن زبردستی شیرازہ بکھیر کر رہ گیا۔ مگر
کشمیری پنڈتوں کے دلوں میں پٹھان گردی، سکھا شاہی، جبر و تشدد،
اورنگ زیب کے علاوہ سوہا بٹ المعروف سیف الدین کے بڑے بڑے
اور ظلم و تشدد کی یاد ہر کسی کے دل میں تازہ ہوئی۔ اسی بات کو
مدِ نظر رکھ کر شری تریلوکی ناتھ جی پنڈتا نے جس ڈھنگ سے اپنے
افسانہ پرنیتر آتما کے دوارا اپنے ہی من میں اٹھتی ہوئی تڑپ بھی کیا وہ
جسے کہ بھگوان پر شردھا اور وشواس رکھنے والی جاتی، دوسروں کے دکھ درد
کو اپنا دکھ ماننے والی جاتی، الفت اور بھائی چارگی، سیدھے سادھے
اور شانتی پوروک جیون بتاتا رہی سماج سے وابستہ لوگوں پر بار بار
اتیاچار کیوں ہوتا ہے۔ کیا نردوش، نشپاپ اور دھرم پر چلنے کی لالچی
ہوتی ہے۔ لیکن اسی کا قول کارن جانتے ہیں جب بڑے بڑے سادھو سنتوں
ودوانوں، سماج سدھارک لوگوں کے علاوہ زمانہ کے دیگر ویر بزرگوں
سے منسلک ہیں۔ مگر کسی بھی ایک سے "من" کو بھانے والا اتر نہ ملنے کے کارن
اور ایسے کے کھوج میں مخلص ذہن رہ کر ہمیشہ اشانت اور دکھی رہتا تھا۔
اور کبھی کبھی بھگوان پر سے بھی وشواس اٹھنے لگتا تھا۔ اس سے صاف
ظاہر ہوتا ہے۔ کہ اس لیکھک آتما کو اپنے ہر سمت گزشتہ جبر یعنی اپنے
پنڈت سماج سے وابستہ بہن بھائیوں، بزرگوں، ماتاؤں اور نوجوان
معصوم شیر خوار بچوں سے کتنا گہرا پریم بھرا دل موجود ہے۔ تواریخ
گواہ ہے۔ کہ ایک ہزار برس پہلے جب وادی کشمیر میں صرف ایک
ہی سماج یعنی صرف کشمیری پنڈت ہی رہا کرتے تھے۔ اس وقت ان
کا آچار، ویوہار، شدھ وچاروں سے بھرپور سادگی، سرلتا اور
پریم بھاونا پر مبنی ہو کر وشواس اور امن کی پوجا، آرادھنا، بھلائی

کہ شائد شادہ امن، شانتی اور سکون کا دور دورا تھا۔ مگر افسوس

انتہا شانتی پسند یہ لوگ کیسے اور کیوں وقت وقت پر ظلم و جبر کا
شکار ہوتے گئے؟ اور آج بھی اسی سماج سے وابستہ لوگوں پر ظلم
جبر اور اتیاچار کا نام ختم نہیں پاتا ہے۔ حالانکہ یہ چھوٹا سا سماج
ابھی بھی دھارمک خیالاتوں سے بھرپور ہے۔ دیا بھاؤ میں اس سماج
کا کوئی ثانی نہیں ہے۔ اپنی نیک کمائی سے، طاقت کے انوسار دان
دینے سے گریز نہیں کرتا ہے۔ بہرحال اپنے گھر سے دوسری برادری کی طرح
بے گھر ہونے کے ستارہ ورشوں بعد بھی سال ۲۰۰۹ کو شری
پنڈتا جی کو کیلاش آشرم جیٹھو کے ایک شمار وہ میں شری مہا
منڈلیشور سوامی دویا نند جی سرسوتی مہاراج سے ان [illegible]
دوارا تالابہ کرنے کا اوسر پراپت ہوا۔ جس کے اندر سے شری پی ایل
پنڈتا جی کافی مطمئن ہو گئے اور ان کے "من" سے وہ بوجھ کسی حد تک
کم ہو گیا۔ جس بوجھ سے وہ پچھلے کافی سالوں سے "من" میں اٹھا کر
ہمیشہ اسی بوجھ تلے اشانت رہا کرتے تھے۔ اب وہ اپنی دکھی
برادری اور ان کے شائقہ سمبھدرت سماجی کارکرتاؤں سے ونتی کرتے
ہیں۔ کہ وہ ان کی طرف اپنی انفرادی توجہ کے ساتھ ساتھ اجتماعی
توجہ دیکر اپنی آنے والی پیڑھی کے ساتھ ساتھ اپنا بھی ادھار اور
سدھار کریں۔ کیونکہ یہی وقت کا تقاضا ہے۔ تاکہ ہم ان بدعادتوں
کو ہمیشہ کے لئے دفن کردیں۔ جو کہ ذلت وقت پلہ ہم پر [illegible]
ورنہ آنے والا زمانہ اور ہماری اپنی ہی آنے والی پیڑھی ہم کو معاف
نہیں کریگی۔ اب میں شری مہا منڈلیشور سرسوتی جی مہاراج کی دل
سے کا ورنن کرنے جا رہا ہوں۔ جو کہ انہوں نے 12.04.2011 کو "پنڈتا جی"
کو لکھا تھا۔ جس سے پنڈتا جی کافی حد تک مطمئن ہو گئے
P.T.O.

کشمیری برہمن (پرانیوں میں) سب سے لوک پریہ سماج رہا ہے۔ کچھ لوگوں کو یہ
راس نہیں آیا۔ انہوں نے اتنی یہ لوک پریتا مٹانے کے لئے یا دبانے کے لئے ایک سرل
سادھن ڈھونڈا۔ "شردوں انیائے" مطلب غلط سننا اور غلط سن کر اس کو غلط ڈھنگ سے
کر پرچار کرنا۔ اس سے سماج کا جاری بھنگ ہوتا ہے۔ اور یہی ہوا بھی ہے۔ مجھے حال
ہی میں کسی کی زبانی سے یہ سننے معلوم ہے۔ جیسا "کشمیری پنڈتوں سے تو برن ہے۔ کہ وہ
لوک پریہ بھجن، اوم، ولیشو گرون ہونا، واودھان، سومیم، بھجتو۔
ولیشو گرون ہونا، واودھان، سومیم، بھجتو، پرنتوی، بھجو وادیا۔
قول دھنو بیرہ، ابجدی، جوا شاہ، ۱۹ شمانیہ، ودھوا، شو رشتار۔
باقی میں آدھو تک کشمیری پنڈت سماج کو اپنے قول ڈھانچے میں لانے کے پریاس رسدھ
شری تریلوکی ناتھ پنڈتا "وان پرستی" جی کو سنہ آشیش دیتا ہوں، شری سوامی دیویانند جی
اپنے پریتم پرشنگ میں پنڈتا جی نے اس سچائی کو جو اس نے خود دیکھی
بھی ہے اور جس کا اس نے مطالعہ بھی کیا ہے اس طرح ورنن کیا ہے۔ مہاراجہ ہری سنگھ
کے شاسن میں کشمیر میں کچھ سمے شانتی رہنے کے بعد اسلامی اگرواد نے پھر جنم لیا۔
مگر کشمیری پنڈتوں کو بھروسہ تھا کہ مہاراجہ کی حکومت میں یہ سو رکھشت ہیں۔ اصلی آنات سے
مندروں میں پوجا پاٹھ حسب معمول ہوا کرتا تھا۔ دھارمک کاریہ وقت کے رواج کے
مطابق ہوا کرتے تھے۔ سماج کے لگ بھگ سو فیصدی پرش لکھے پڑھے تھے۔ اسلام کے
ورودھ گھر کی عورتیں کچھ کمائی کی وجہ گھرانی میں لگی رہتی تھیں۔ جبکہ پوروش ورگ
میں سے کوئی ایک رامائن، گیتا کا پاٹھ اور کوئی دھارمک ستہ پستک یا استد گرنتھ
کا ویاکھیان کرتا رہتا تھا۔ اس طرح تمام پریوار اپنے دھارمک کتھاؤں
سے روشناس ہوکر پوتر سنسکاروں سے سموگت رہتے تھے اور زندگی کے
شائستہ سمے پر وہ سنسکار دئیے جاتے تھے۔ جس سے کہ ان کشمیری
پنڈتوں کا ہر جگہ مان کیا جاتا تھا۔ مگر افسوس سے شائستہ کہنا پڑتا ہے کہ جب
سمے پہلے جب یہاں اسلامی کٹر پنتھی حملہ آور بن کر آئے تو انہوں نے ۱۳۲۵ء

یہاں سے بشیر جیسے شادی شدہ لوگوں پر اتنا ظلم ڈھائے کہ کچھ تو بھاگ گئے۔ کچھ مجبور ہو کر
ہار گئے اور بہت ساروں کو تلوار کی نوک پر مذہب پریورتن کرنا پڑا۔ یہی
کارن ہے کہ اب بھی بہت ساری جاتیوں اور اپجاتیوں کے نام دونوں سماجوں
میں سمان پائے جاتے ہیں۔ آخر ایسا کیوں ہوتا رہا؟ پرانے بزرگ جواب
دیتے تھے۔ ایشور کی یہی مرضی تھی۔ مگر میں یہ ماننے کے لئے تیار نہیں۔ کیونکہ ہماری
دھارمک پستکیں غلط نہیں ہو سکتی ہیں۔ جن سے صاف عیاں ہوتا ہے کہ بھگوان
ہمیشہ سچائی کے ساتھ ہوتا ہے۔ جھوٹ اور چھل کپٹ والوں کے ساتھ نہیں۔ پھر
ایسا کیوں ہو رہا ہے؟ اسی کارن وش میں کبھی کبھی ناستک بن جاتا تھا۔
اور ایشور کے ہونے پر وشواس اٹھ جاتا تھا۔ جس کی وجہ سے میرا من ہمیشہ گھبرایا رہتا
تھا۔ آخیر ایک شبھ اوسر پر مجھے کیلاش آشرم جیوتش کے فرقلمین سے ملنے کا ایک
دھارمک سمارو میں آنے کا نمنترن مل گیا۔ وہاں جا کر معلوم ہوا کہ وہاں پر
ادھشٹھاتا سوامی ونیا نند لیشور جی مہاراج (ودیانند سرسوتی) سے اپنا پرشن دوہرایا
تو انہوں نے جو جواب دیا اس کا تذکرہ پہلے کیا گیا۔ مگر ایک اور بات جو انہوں نے
وہاں پر کہی اس کو میں ریکارڈ دوہرا رہا ہوں۔ کتنی بری پرانت جاتی میں ایک
ودمبنا ہوئی ہے کہ انہوں نے اپنی پوجا پدھتی اور اپنے دھارمک کاریوں میں دو
ورودھی پرکرتیوں کی پدھتیوں کا سماویش کیا ہے۔ جس کے کارن ان کے دھارمک
کاریوں کے بیچ وورود پرائی دشمنی چلی آ رہی ہے۔ مطلب ویدک
کریا کے ساتھ ساتھ تانترک کریا بھی ہوتی رہتی ہے۔ جیسا نتیجہ آپ لوگوں کے
سامنے ہے۔ باقی اس بات پر وشواس رکھو کہ شاستروں میں جو کچھ لکھا ہے وہ
سچ ہے کیونکہ:۔ "یتو دھرما، تتو جیاہ، دھرم ایو، ہتو، ہنتی، دھرمو،
رکشتی، رکشتاہ" لہذا شاستر وچن کبھی غلط نہیں ہو سکتے ہیں۔ بلکہ دھرم کاریوں
میں ہی ہمارے دوارا غلطیاں ہوتی رہتی ہیں۔ جس کا ہم پر الٹا اثر ہوتا
رہتا ہے۔ جس کے لئے ہم جاتی کے دھرم گورو ذمہ دار ہیں۔ مثلاً اگر P.T.O

کبھی وشنو یا اور کبھی دیوتا کی پراپتی کے لئے کوئی دھرم کاریہ کیا جاتا ہے۔ پھر اگر
وہ کاریہ وِدھی کے انوسار نہ کیا جائیگا تو اس کاریہ کا الٹا اثر ہوگا۔ اس
کے برعکس اگر کسی دھرم کاریہ کو شاستر انوسار دھرم کاریہ سمجھ کر انجام دیا جائیگا
تو وہ کاریہ نشکام کرما بن جاتی ہے۔ مگر اگر کوئی دھرم کاریہ بالکل لفظ عام
ہوا سے شرا انجام دیا جائیگا تو نتیجہ دیکھو کہ اس کاریہ کا نہ کبھی الٹا اثر ہوتا
ہے اور نہ کبھی اس کاریہ کا پھل ہی حاصل ہوتا ہے۔ چونکہ ہماری شاستری کریائیں
ویدک بانی پر مبنی آدھارت ہیں۔ اس لئے اس ویدک بانی میں بدنیتی ڈال کر
ڈال کر اپنے ہی ہاتھوں سے اپنی تباہی کرنے سے گریز کرو۔ ایک اور بات غور
طلب ہے کہ ہم کسی بھی اتسو پر چاہے وہ نجی رانی ہو، یگیہ ہو، جنم دن ہو، یا سورگ
باش ہوئے بزرگوں کا شرادھ ہو یا اور کوئی اتسو ہو۔ ویدک منتروں کا اچارن کرتے
دھوپ، دیپ، کافور پر جلوت کرتے ہیں۔ اور ہر کسی جیوتی کے لئے اس کو پرماتما کا
کا ہی سوروپ مان کر شکتی ترپتی کے لئے بھوگ رکھتے ہیں۔ اور کہتے بھی ہیں کہ یہ پرماتما
تو سب کا جیون داتا ہے۔ "یعنی تم ہی ماتا تم ہی پتا ہو" کے مطلب کو اچھی طرح
سمجھتے بھی ہیں اور مانتے بھی ہیں۔ پھر کیوں اور کیسے ایک نربل لینرو کو کاٹ
کر بلی چڑھاتے ہیں۔ یہ کیسا دھرم ہے، یہ کیسا انصاف ہے اور یہ کیسا ویدک سنسکار
ہو سکتا ہے۔ کیا کوئی ماتا پتا اپنے ہی سنتان کو کاٹ کر کھا سکتا ہے۔ پھر
پرماتما جو کہ ساری کائنات کا ماتا پتا ہی ہے کیسے اپنے سنتان
کی بلی کو سویکار کر کے پرسن ہو سکتا ہے۔ وہ تو الٹا شاپ دیکر ہمیں بیماری
بربادیوں کے لئے دنڈ تو دیتا ہی۔ جس کا نتیجہ ہمارے سامنے ہے کیونکہ آج ہم
انہی بربادیوں بیماریوں اور پاپ کرموں کا پھل تو بھوگ رہے ہیں۔ اور ہاں ذرا
غور سے دھیان کرو کہ بڑے بڑے تہواروں اور اتسووں کو اچھی طرح منانے
حالات ویسے منانے کے لئے ہم کتنے دنوں سے گھر کی صفائی، تن کی صفائی اپنے
آس پاس کی ہر وستو کی صفائی کس طرح شروع کرتا؟ اور پرتن چھتا ہے؟

سپٹ کرتے رہتے ہیں۔ پھر ان کی حفاظت اور انکار کرنا کے لئے وزن بھی رکھتے ہیں۔

اتنا کچھ کرنے کے بعد پھر وہی الٹا کام یعنی واپس چھٹی وغیرہ غلط، اور تانترک کاریوں
کو سر انجام دیتے ہیں۔ یہ کہاں کا دھرم اور کیسا دھرم ہو سکتا ہے۔ ایسے کاریوں
سے ساری جانی ہیں وہ مضبوط نہیں ہوگا۔ تو کیا کلیان ہوگا؟ اور اب رہا ہمارے
سنسکاروں کا حال دیکھئے ہم سارے سنسکار ہیں ڈھونڈ رہے بیٹھے ہوئے تسلیم
نہیں ہیں۔ کہ ہم کشمیری پنڈت سولہ سنسکار پڑھتے ہیں ہمارے چوبیس سنسکار رہیں۔
مگر کیا ہم ان سنسکاروں کو اپنے سمے پر کرتے ہیں۔ گربھ دان سنسکار، جات
کرم سنسکار، مونڈن سنسکار، ان پراشن، سوریہ درشن اور یگنوپویت وغیرہ جیسے
اب یہ لگ بھگ سارے سنسکار "اگر سمے نے ساتھ دیا تو" ہم شاستر
ودھی کو بھلا کر صرف دنیاوی دکھاوے کے لئے بچوں کے شادی بیاہ کے اوسروں
پر ہی کیا کرتے ہیں۔ اس کا وہی الٹا اثر نکلتا ہے۔ جس طرح جلتی آگ میں گندم کا
بیج بونے سے نکلے گا۔ مطلب سمے بھی برباد، محنت بھی برباد اور بیج بھی برباد۔
نتیجہ تباہی ہی تباہی۔ یعنی اس غلط سوچ کو عمل میں لا کر ہم نے خود اپنے ہی
ہاتھوں سے تباہی کا سامان تیار کر کے رکھا۔ بہرحال یاد رکھو اگر سمے پر کئے جانے
والے سنسکاروں کو اپنے سمے پر سر انجام نہ دیا گیا۔ تو ایسی کاریوں وقت ہماری
بدھی بھرشٹ ہو گی۔ تو جب بدھی ہی بھرشٹ ہو گی۔ تو ٹھیک برا تمیز کیسے ہو سکتا
ہے۔ اس لئے میرے پیارے بھائی بندو خود دھیان دو اور جواب دو کہ ہمارے
سارے سماج کے پتن کا ذمہ دار کون ہے؟ باقی یاد رکھو اس کلجگ میں
باقی یگوں کے نسبت ایک وقت کی آیو بہت کم ہے۔ بڑے بڑے وید اور اپنشد،
شاستروں، دھرم گرنتھوں، پرانوں وغیرہ کو پڑھنا سمجھنا اور پھر ان پر چلنے
کے لئے یہ آیو کافی نہیں ہے۔ مگر اس یگ کا اثر یہی ہے کہ اگر اپنے اس بگڑے
ہوئے سماج کو تم واقعی اسی جنم میں اپنے ہی ہاتھوں سے سلجھا کر اس گہرا گہرا
دلدل میں پھنسی ہوئی نیا کو اس بھو ساگر سے پار کرانا ۵.٦.۲

جا سکتی ہے۔ تو صرف ایک ہی تھا اگر سنسار میں شری مد بھگوت گیتا، جو کہ نو ہم
نر آکار پرماتما نے سولہ کلا سمپورن شری کرشن بھگوان نے سمرتھ پانڈو جاتی
کے کلیان کے لئے ارجن کو مخصوص نمت بنا کر کہی ہے۔ پڑھو اور پڑھ کر عمل
کرو پھر نتیجہ دیکھو کلیان ہی کلیان ہوگا۔ اور اسی کے ساتھ ساتھ اُن ویر
ودروہی، دھرم ودروہی، شاستر ودروہی اور ہنسا پر آدھارت کو رپنتھیوں کی۔ اس
کے علاوہ صرف زبان کے سواد کے لئے اور اس سمشان بھومی کے اوانت ابھی تک جوان
پانچ تتو بھوتوں کے ڈھانچے میں موجود بھوگ ایندریوں کو پربھنٹ اور پالام بنانے
والے آہار اور سماج میں ترقی حلوی پرانیوں کو سنہا ہی ہوگا۔ کیونکہ اسی وجہ
سے ہم بار بار اتیاچار اور ظلم کے ساتھ ساتھ تھا سنکٹ سے دو چار ہوتے آرہے
ہیں۔ یاد رکھو ہمیں اسی آہار پر واپس جانا ہوگا جو ہمارے اُن پوروجوں کا تھا
جن کی سنتان ہونے پر ہمیں فخر ہے اور اس آہار کا تیاگ کرنا ہوگا۔ جو کہ صدیوں
پہلے ہم پر تلوار کی نوک پر تھوپ دیا گیا تھا۔ ذرا غور سے سوچو اور اپنے گریبان
میں جھانک کر دیکھو کہ جب ہمیں سنسکاروں سے بھر پور اس دھرتی پر جاتی کے لوگوں
نے صرف مٹھی بھر ایک مسلمان قصائی سے پچھلی شیو راتری پر پانچ لاکھ کا ماس خریدا تھا۔
یہ بات ایک اخبار میں آئی تھی۔ باقی کا اندازہ خود کرلو۔ ایک طرف شیو بھگوان کی آرادھنا،
شیو جینتی دن کا ورت، دوسری طرف تانترک کریا کے لئے نربل بے زبان اور بے قصور
پشوؤں کی ہتیا۔ کہاں کا دھرم ہے؟ شاستر کہتا ہے۔ انومنتا نشستا
ہنتا کریہ ویکریہ سنسکرتا چوپہرتا چہ کھادک، منوسمرتی کا اشلوک ارتھ:
پشوؤں کی ہتیا کا انومتی دینے والا، جیوت پرانی کو مارنے اور ٹکڑے کرنے والا، بیچنے والا
اس کا ماس خریدنے والا، اس کا ماس پکانے والا، اس بے زبان جیو کا ماس
کھانے والا۔ ان سب پر قتل کا پاپ چڑھتا ہے۔ اور یہ تمام قاتل تصور
کئے جاتے ہیں۔ اب اس سنسار میں ہتیارے کہلانے والی جاتی کا کلیان
کیسے ہوگا۔ اب اگر اپنا اور اپنے بچوں کا اور اپنے سماج کا کلیان ہے تو

چاہتے ہو۔ تو آج سے کیوں ابھی سے اس کا ترک کر دیا [illegible]
پنڈتوں کو آزاد اور ان کے اکنوں کے خون کے دھبوں سے بھرے ہوئے وشنوؤں
کو نیلام کر ختم کر دو۔ اور اپنے چوبیس سنسکاروں کو اپنے شبدو پر نیلام
سیوا ندیاؤ کے تیز ہتھیار سے، بالکل سرلتا سے اور شدھ ویدک منتروں کے
کاریہ کرموں سے سر انجام دیتے رہو۔ تب ذی جوان مشتبہ، ابھینار اور دھرم پر چلنے
والے اپنے بیگنوں سے خود پوچھیں "کیا ہمارے ان پر یہ تبلیغ جنوں ہزاروں برسوں زہرا گیا ہے"
[illegible] کے اپنے شروع اگر تمام سے پوچھو کہ کیا ہندوؤں کا ورن سے
آج تک کسی کا کلیان ہوا ہے۔ تو دیکھنا جواب دیا گا۔ کہ آج تک نہ کسی کا ہوا ہے۔
نہ کسی کا ہوگا۔ اور نہ کسی کا ہونے والا ہے۔ بلکہ کرائے کی گفتگو میں پنچ لبستہ پرف
پر بیٹھنے سے کسی کو گرمی ملے گی یا انبڑت پر جلتی ہوئی آگ کے نزدیک بیٹھنے سے کسی کو
آج تک ٹھنڈک ہوا محسوس ہوتی ہے۔ اب میں آپ سے صرف ایک ہی ونتی ہے۔ کہ اگر اپنا
اور اپنے پریوار کے ساتھ تمام سماج میں بسنتے ہوئے اپنے سماج اور برادری کا کلیان
چاہتے ہو۔ پھر آپ ان ریشیوں، سادھو سنتوں اور بھگوانوں کے نام پر لگائی گئی
گندا بدبودار دھبہ نہیں لگانا چاہتے ہو۔ تو جن کے تم سنتان ہو۔ اور آپ
آج کے اس سنکٹ سے مکتی چاہتے ہو۔ اور اس کے ساتھ ساتھ دوسرے لوگوں
کے حقارت بھری نظروں کے بجائے عزت اور پیار بھری نظروں سے دیکھنا چاہتے ہو۔
اور اگر آپ اپنا یہ اصول پر [illegible] جنم سپھل بنا کر اپنے اصلی منزل کے لکشیہ
تک صحیح پہنچنا چاہتے ہو۔ تو آج سے ہی اس کا ترک کر دیا اور بنیاد
کا خاتمہ کر دو۔ جن کے وشنو ہم بے زبان ناشوان شریر پر گھمنڈ [illegible] کرتے
سمجھاتے ہیں۔ جبکہ ناشوان شریر کو ایک دن شمشان بھومی میں جل کر
بھسم ہونا ہے۔ باقی اس دھرتی کے ایک مہان ودوان اور اس سماج کے ایک
دفتم گرو شوگنگا پنڈت پریم ناتھ شاستری نے بار بار اس بات پر زور دیا
ہے۔ کہ کبھی بھی شاستر و پر یا نین وانت نے کہا تا کہیں بھی نہیں لکھا ہے؟؟

اس لئے اس پوتر پربت اور انکشیو آورت پر جانو اور خاص کر جیشٹھ دہار
کئے ہوئے سارے تیرتھ پر جانے کے لئے کسی بھی مہورت اس اوچت نہیں ہے - کیونکہ
مَن کی شُدھی کے بغیر کوئی بھی شبھ کاریہ سپھل نہیں ہو سکتا ہے - جبکہ
مَن کی شُدھی شردھا آچار سے ہی ہوتی ہے - مطلب "آن دیو پر ونا"
اب میری آپ لوگوں سے آگیہ ونتی ہے - کہ کوئی بھی نوگرہ یا گوچر میں
نتائج کے لئے مہورت دیکھنے کی ضرورت نہیں پڑتی ہے - بالکل اسی طرح
نوگرہ یا سوریکی ابپائے کے لئے یا اس پر چلنے کے لئے بھی کسی مہورت
کی آوشکتا نہیں ہوتی ہے - اس لئے اگر اس بات کو شردھا مَن سے سانکھ
سویکار کرو گے - تو پرم پتا پرمیشور اس جگت سے انجانے یا غفلات
یا اگیانتا سے کارن کی ہوئی غلطی کو معاف کرتا ہے - کیونکہ وہ بخشنہار
کے نام سے بھی پکارا جاتا ہے - بھگوان سے پرارتھنا کرتا ہوں - کہ
وہ سارے سنسار کے شانتی شانتی اپنی اگیانتا سے شانتی شانتی
سماج کے ستائے ہوئے اور تباہ شدہ کے دلدل میں پھنسے ہوئے کشمیری
پنڈت سماج کو پھر اسی شرت بڑھنے کی شکتی سے بھرکا برتن کریں -
جسکی وجہ سے یہ سماج سارے سنسار میں جانا جاتا تھا -
اوم شانتی، شانتی، شانتی ۔



स्वामी कुमार जी
गीता सत्संग आश्रम, मुट्ठी

# लेखक परिचय



**नाम :** त्रिलोक नाथ पण्डित

**जन्म :** आषाढ़ शुल्क द्वितीया तदनुसार 23 जून 1933 ई०

**जन्म स्थान :** कुलगाम, कश्मीर

**विद्याध्ययन :** एम०ए० हिन्दी एवं संस्कृत, बी० एड०

**कार्य क्षेत्र :** अध्यापन प्रधानाचार्य पद से सेवा निवृत

**पूर्व सामाजिक कार्य :**

1. महामंत्री देहाती हिन्दू संगठन कश्मीर ।
2. ज़िला प्रभारी विश्व हिन्दू परिषद, अनन्तनाग कश्मीर ।
3. उपाध्यक्ष विश्व संस्कृत प्रतिष्ठान, कश्मीर मण्डल ।
4. संघ प्रमुख एवं संघचालक कश्मीर विभाग (1993–2008)
5. आचार्य श्री गीताभवन मुटठी जम्मू (1997–2009)
6. आचार्य श्री गीताभवन कुलगाम (1980–1990)

   1990–91 से विस्थापित रूप से मुटठी, जम्मू में निवास। परोपकार एवं लोकसेवा एक मात्र जीवन लक्ष्य।

**वर्तमान दायित्व :**

1. अध्यक्ष संजीवनी शारदा केन्द्र ।
2. प्रदेश उपाध्यक्ष इतिहास संकलन योजना ।

**रचनाएँ :–**

**प्रकाशित :**

1. मानव जीवन का मूलमन्त्र 'अहिंसा'
2. कश्मीर के एक कमपरिचित सिद्ध महापुरुष
3. महाशिवरात्रि (कश्मीर पद्धति की विशेषता)

**अप्रकाशित :–**

1. आदि शंकराचार्य रचित 'तत्वबोध' एवं 'आत्मबोध' का व्याख्या सहित अनुवाद।
2. हिन्दुत्व की कुछ बुनियादी बातें (अभिलेखों का संकलन)
3. शारदा देवी की एक कश्मीरी लीला का (हिन्दी अनुवाद सव्याख्या)
4. हितोपदेश (हिन्दी अनुवाद)

**प्रकाशनाधीनः–** कश्मीरी पण्डित समाज (जितना प्रबुद्ध उतना कष्टभोगी) क्यों ?

**लेखनाधीनः–** **'इस्लाम से सम्बन्धित'**
**मेरे जीवन के अनुभव (आत्म कथा)**

## प्राप्ति स्थान :-

1. **संजीवनी शारदा केन्द्र**
   **आनंद नगर, बोडी, जम्मू**
2. **गीता सत्संग आश्रम, मुट्ठी**
3. **श्री स्वयमानन्द आश्रम,**
   **लोवर रूपनगर, मुट्ठी**
4. **कृष्ण सत्संग भवन**
   **144, संजीवनी कुटीर,**
   **वज़ीर बाग, बोड़ी**

JANDIYAL PRINTING PRESS # 2553140